ज्ञानपीठ लोकोदय ग्रन्थमाला, हिन्दी ग्रन्थाङ्क—२०

आकाशके तारे : धरतीके फूल

श्री कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर'

भारतीय ज्ञानपीठ • काशी

और किसे ?

स्वर्गमें सुना है देवता रहते हैं और जन्नतमें फरिश्ते, पर मैं तो मनुष्यको ही देवता और फरिश्ता मानकर जीता रहा।

मनुष्यकी सेवा मेरा धर्म, मनुष्यका प्यार मेरी खुशी, मनुष्यमें देवत्वकी दीप्तिका दर्शन मेरा साहित्य और सत्तेपमे मनुष्यता ही मेरा मिशन रहा।

मेरे साधनहीन जीवनकी सबसे बडी सम्पदा मनुष्यके प्रति मेरी अखण्ड निष्ठा रही और यही मेरी शक्ति भी!

मनुष्यका चोगा पहने दोजखके कीडे भी मुझे मिले और मरघटोंके भूत भी। शिकायतकी कोई बात नही कि उन्होंने मुझे नोचा-खसोटा भी और कभी-कभी तो ऐसा भी हुआ कि यह नोच-खसोट इस सीमा तक गई कि मनुष्यके प्रति मेरी निष्ठाकी बेल ही मुझे सूखती दिखाई दी।

जीवनकी इन ज्वालामुखी घडियोंमें, पिछले वर्षोंमें मुझे मेरे सहृदय और निष्काम बन्धु श्री साहू शान्तिप्रसाद जैन और उनकी पत्नी श्रीमती रमारानीजीके स्मरण-सम्पर्कने सदा ही वह मधुर सरसता दी कि निष्ठाकी वह सूखती बेल लहलहा उठी।

इस स्थितिमे मैं अपने ये तारे और फूल और किसे समर्पित करूँ, क्योंकि इनमे मेरी मानव-निष्ठाके उच्छ्वास और निःश्वास ही तो है?

क० ला० 'प्रभाकर'

पाठकोंको बधाई

हिन्दीमे किसी पुस्तकका नौ महीनेमे दूसरा सस्करण होना, ऐसा ही है, जैसा किसीके घर नौ महीनेमे ही दूसरे बालकका जन्म !!!

आज जब 'आकाशके तारे : धरतीके फूल' के साथ यह हो रहा है, तो मै सोच रहा हूँ—दस वर्ष बाद जब हिन्दीका बाजार इतना विस्तृत हो जायगा कि किसी लोकप्रिय पुस्तककी लाख-पचास हजार प्रतियाँ सालमे बिक जाना एक आम बात होगी, तो मेरी यह उक्ति एक आश्चर्योक्ति हो जायगी ?

वह दिन शीघ्र आये; आज तो यह मेरे पाठकोकी एक विजय है और इसपर मै उन्हे बधाई देता हूँ।

—लेखक

*

और यह है वन्दना

अच्छी सख्यामे छपा दूसरा संस्करण भी पाठकोकी आलमारियोमे पहुँच गया और यह है तीसरा सस्करण। गुजराती, मराठी, बंगला, तमिल, उर्दू, अंगरेजी और डच भाषाओमे भी कुछ तारे झिलमिलाये और कुछ फूल मुस्कराये।

तीसरे संस्करणमे कुछ कहानियाँ निकाल दी है, जो कहानीसे अधिक गद्य काव्य थी और उनकी जगह नई कहानियाँ रख दी है। इससे संग्रह पहलेकी अपेक्षा पुष्ट हो गया है। और बस अब फिर पाठकोकी चीज उनके हाथोमे है, मेरी वन्दनाके साथ।

—लेखक

कहाँ क्या है ?

कहानियोंकी कहानी

ये छोटी कहानियाँ हैं और इनकी भी एक कहानी है, जो आज पहले-पहल आपसे कह रहा हूँ।

१६२८ मे किसी मासिक पत्रिकामें छपा एक लेख पढ रहा था कि एक उद्धरण आया—"सम्पूर्ण जीवनका सम्पूर्ण चित्र उपन्यास है और एक घटनाका सम्पूर्ण चित्र कहानी।" यह शायद कार्लाइलकी राय थी। पढना बन्दकर मै सोचने लगा, तो एक प्रश्न मुझमे भर गया—'जीवनकी यह एक घटना तो छोटी-से-छोटी भी हो सकती है, तो फिर कहानीके विस्तारकी छोटी-से-छोटी सीमा क्या है?'

यह प्रश्न मुझमे भर गया तो भरा ही रहा और १६२६ का वह समय आया, जब महाप्राण बापू देशके दौरेको निकले और मैं चन्देको चला अपनी जन्मभूमिमे। एक दिन एक धनपतिसे इस बारेमें बातचीत हुई, तो मै प्रेरणा पा गया और मैंने अपने भीतर भरे उस प्रश्नके समाधानमे छोटीसे छोटी कहानीका यह पहला प्रयोग किया—

सेठजी

"महात्मा गान्धी आ रहे हैं, उनकी 'पर्स' के लिए कुछ आप भी दीजिये सेठजी!"

"बाबूजी, आपके पीछे हरसमय खुफिया लगी रहती है, कोई हमारी रिपोर्ट कर देगा, इसलिए हम इस झगडेमे नही पडते!"

"मै रात-दिन चन्दा माँग रहा हूँ, जब मुझे ही पुलिस न पी गई, तो रिपोर्ट आपका क्या कर लेगी?"

ज़रा सोचकर हाथ जोड़ते हुए-से बोले—"अजी, आपकी बात और

है। हम कलक्टर साहबसे डरते है। आपकी बात और है। आपसे तो उल्टा कलक्टर ही डरता है।"

प्रसन्नतासे मैने कहा—"तो आपही डरनेवालोंमें क्यों रहते है? कांग्रेसमे नाम लिखा लीजिये, फिर कलक्टर आपसे भी डरने लगेगा।"

सेठजीने दॉत निकालकर जो मुद्रा बनाई, उसकी ध्वनि थी—"हें, हें, हे!"

इसे लिखकर मुझे लगा कि कुछ मेरे हाथ लग गया है और इसी उत्साहमे मैने इस तरहकी १०–१५ चीजे लिखी। इनमे 'सलाम' का खूब प्रचार हुआ, जो इस प्रकार है—

सलाम

सर विलियम पहली बार हिन्दुस्तान आये। एक दिन कुलीने गाडीसे उतारकर उनका सामान वेटिंग रूममें रक्खा। अब उसकी हथेलीपर एक रुपया था।

उसने कहा—"हुजूर कम है!"

सर विलियम कुछ नही समझे। उन्होने अपनी भाषामे कहा—"क्या कहते हो?" कुली कुछ नही समझा। फिर भी उसने दोहराया—"हुजूर, कम है!"

पास ही एक काला ईसाई बैठा था। उसने कुलीके हाथसे वह रुपया उठा लिया और चवन्नी उसके सामने फेककर कहा—"सूअर!"

कुलीने चवन्नी उठाई और माथेपर हाथ लगाया—'सलाम हुजूर!'

सर विलियम सब कुछ समझकर बोले—"ओह, इण्डिया दी स्लेव कण्ट्री!" (हिन्दुस्तान एक गुलाम मुल्क!)

काला साहब रुपया लौटाते हुए बोला—"यस सर, यस सर!"

सलामकी सलामतीका नतीजा यह हुआ कि अब इनकी सख्या २० के लगभग हो गई।

●

साहित्यिक मित्रोंमें सबसे पहले अज्ञेयने इन्हें पूरी तरह सराहा। कहा कि यह हिन्दीकी छोटी कहानी है और कहानीके इतिहासमें इसे तुम्हारी नई देन माना जायेगा, पर रघुकुलतिलकने इन्हें कहानी माननेसे इंकार करते हुए कहा—यह स्कैच लिखनेकी कलामें एक नया प्रयोग है—निश्चय ही बहुत सुन्दर!

१९३५ में प्रेमचन्दजीको मैंने दोनों मत बताये और उनकी राय पूछी। स्वयं पढ़कर बोले—"शाबाश, यह एक नई कलम है, गद्यकाव्य और कहानीके बीच एक नई पौध, जिसमें गद्यकाव्यका चित्र और कहानी-का चरित्र है। खूब लिखो। जब इनका संग्रह छपे, तो याद दिलाना, मैं भूमिका लिखूँगा।"

अब मैं निश्चिन्त हो गया और जब-तब लिखता रहा। इस सम्बन्धमें इतनी स्पष्टता मुझमें है कि यह जो कुछ भी हो, मैं इस स्थितिमें नहीं हूँ कि गर्व कर सकूँ, क्योंकि मैंने इनके लिए कोई श्रम नहीं किया। किसीको राह चलते कुछ मिल जाये, तो यह एक चांस ही तो हुआ!

गोयलीयजीके तानों, तकाजों और झुड़कियोंके बल पर अब जो इनके प्रेस देखनेकी घड़ी आई, तो मैंने झाड़-पछोड़ की, जिसमें कुछ मॅज गई और कुछ छूट गई।

बस इन कहानियोंकी यही कहानी है, जो आज पहले-पहल आपसे कह रहा हूँ।

विकास लिमिटेड
सहारनपुर

कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर'

नन्दन

[१]

नन्दन अपने गाँवका एकमात्र धनी था। सारे गाँवमें उसकी ऊँची हवेली दूरसे दिखाई देती थी। आस-पास चारों ओर उसका नाम फैला हुआ था।

उस दिन खबर उडी कि आज सन्ध्याके समय गाँवमें डाका पडेगा और खबर क्या उडी, गर्वोन्मत्त डाकू-सरदारने खुद ही यह खबर भेजी थी। गाँवमें और तो सब गरीब थे, डाकू भला उसका क्या लेते—क्या बिगाडते। उनके लिए तो गरीबी आज कवच थी। वे पूरी तरह विश्वस्त थे कि डाकेका नोटिस नन्दनके नाम ही है।

नन्दन भी यह जानता था। वह उस दिन, दिन भर अपनी हवेलीके किवाड बन्द किये भीतर घुसा रहा। कैसे वह डाकुओंसे अपने माल, मान और प्राणकी रक्षा करे, यही उसकी चिन्ता थी।

उसने जेवर और धन अपनी हवेलीके पीछेवाले उपवनमें जगह-जगह बखेर दिया। मोतियोंका हार नेवलेके बिलमें रक्खा, तो सोनेकी बेरी कुएँमें डाल दी। गिन्नियाँ खादके गड्ढेमें दबाईं, तो रुपयोंकी थैलियाँ बूढे बडकी खोखरमें भर दीं। यही उसने दूसरे कीमती सामानका किया।

उसकी हवेलीके पिछले हिस्सेमें एक बडा-सा गड्ढा था। उसमें वह स्वयं बैठा और अपने ऊपर उसने एक टूटा-सा टोकरा ढाँक लिया। सन्ध्या होते ही हवेलीका द्वार उसने खुलवा दिया और एक भी कमरा ऐसा न छोडा जिसका द्वार बन्द हो या जिसमें कुछ भी व्यवस्थित हो। उसे उस गड्ढेमें बैठे, टोकरीकी झिरखियोंसे सारी हवेली दिखाई दे रही थी।

दलबल सहित रातमें डाकू आये, तो वे सीधे नन्दनकी हवेलीपर

पहुँचे। उन्हें विश्वास था कि वहाँ एक पूरे युद्धकी तैयारी होगी, पर यहाँ तो द्वार खुले हुए थे। चौकन्ने-सम्भलते वे भीतर घुसे, पर हवेली तो बिखरी-सी पड़ी थी।

'भाग गया शैतान और सारी दौलत भी साथ ही ले गया।' डाकुओंके सरदारने कहा और वे सब हाथ मलते लौट गये। नन्दनका दिल पहले तो धड़कता रहा, पर अब मुसकरा रहा था।

[२]

दूसरे दिन गाँवके बड़े-बूढ़ोंने नन्दनके धैर्य और बुद्धिमत्ताकी प्रशंसा की, पर कई दिन बाद भी उन्होंने नन्दनको उसी गड्ढेमें अपनेको ढँके-बैठे देखा, तो उन्हें आश्चर्य हुआ।

उन्होंने उसे समझाया कि अब कोई खतरा नहीं है। अपने घरको फिरसे व्यवस्थित करो, अपनी सम्पदाको सुन्दर आलमारियोंमें सजाओ और स्वयं भी अपने सुखद पर्यंक पर सोना आरम्भ करो।

नन्दन सबकी सुनता है, सिर हिलाता है, पर मानता नहीं। कहता है—जिस पद्धतिने मेरे प्राण बचाये, धन-सम्पदाकी रक्षा की, उसका त्याग भला मैं कैसे कर सकता हूँ?

सब उसे समझाते हैं कि वह संकट-कालकी नीति थी। उस समय उसका व्यवहार करनेके लिए हम तुम्हारी प्रशंसा करते हैं, पर आज तो उसका पालन एक विडम्बना है। कल जो सुरूप था, आज वह कुरूप है। जब वह परिस्थिति ही नहीं, तो वह नीति-पद्धति कैसे ठीक रहेगी? उसे छोड़ो और अपना स्वस्थ रूप ग्रहण करो।

नन्दन बहसें करता है और एक-से-एक बढ़कर तर्क खड़ा करके उस पद्धतिका समर्थन करता है।

सब देखते हैं कि उसकी सुन्दर हवेली सूनी और उजड़ी पड़ी है और उसकी धन-सम्पदा भी खोखरों-गड्ढोंमें बिखरी है। बात-चीतसे अनुमान

होता है कि अब वह यह भी भूलने लगा है कि कौन चीज किस खोखरे या गड्ढेमें है, पर वह सन्तुष्ट है और स्वयं उस टोकरेसे ढके गड्ढेको ही अपना शयन-कक्ष बनाये हुए है।

श्रद्धामें डूबकर वह उन खोखरों—गड्ढोंको पुकारता है रीति-प्रीति और उस बड़े गड्ढेको कहता है—जन्म-कूप!

सब देखते हैं कि उसकी सुन्दर हवेली सूनी-उजड़ी पड़ी है, उसकी धन-सम्पदा उन गड्ढों-खड्डोंमें बिखरी है और वह स्वयं भी उस टोकरेसे ढके गड्ढेको ही अपना शयनकक्ष बनाये हुए है।

झोंपड़ी

रावकी अट्टालिकाके पास ही खडी थी एककी झोंपडी। अट्टालिका आकाशसे इतरा-इठलाकर बातें करती, उसे अपनी विशालताका गर्व, तो उच्चताका दर्प !

झोंपडी पृथ्वीकी गोदमें सिमटी-दबी-सी, अपना अस्तित्व बचाये, जीवनके दिन बिताती, उसे अपनी लघुताका बोध, तो अशक्तिका भान !

अट्टालिका कभी झोंपडीकी ओर देखती, तो उसकी मुद्रामें झलकता लघुताका परिहास और झोंपडी कभी अट्टालिकाकी ओर सिर उठाती, तो उस पर स्वयं ही छा जाता, हीनताका आभास !

उस दिन प्रभातमें ही अचानक प्रकाशसे उठा तूफान। पहले ही झोंकेमें झोंपडीके पाखे और छप्पर धरती पर आ-गिरे !

अट्टालिका ज्यों-की-त्यों खडी थी।

उसने झोंपडीका यह रूप देखा, तो कुछ उभर-सी उठी।

हँसी उसके ओठोंपर क्या बिखरी, रोम-रोमसे फूट चली। झोंपडी पडी कराह रही थी। यह हँसी उसने सुनी, तो कसक उठी, पर उसका कण्ठ स्वरहीन ही रहा।

सन्ध्याको एक बाहरसे आया तो आये कुछ और भी एक और तब हाथों-हाथ खड़े हुए पाखे और उठ टिका छप्पर। अब झोंपडी फिर ज्योंकी त्यों खडी थी।

* *

उस दिन प्रभातमें ही धरतीसे उठा अचानक भूकम्प। पहले ही धक्केमें अट्टालिकाकी दीवारें खिल गईं, दूसरेमें डाटें चटकीं और तीसरेमें

छतें धरतीकी छाती पर इस तरह छितरा गईं कि जैसे ईंट-रोड़ोंके अतिरिक्त वे कभी और कुछ थी ही नहीं !

राव आया, इधर-उधर घूमा। इंजीनियर आये, इधर-उधर घूमे, पर अट्टालिका जो औन्धेमुँह गिरी-सो-गिरी !

वह अब मलबेका ढेर थी, मलबेका ढेर ही रही।

झोपड़ी फिर ज्यों-की-त्यों खड़ी थी। उसने अट्टालिकाका यह रूप देखा, तो वह सिहर उठी, पर उसका कण्ठ स्वरहीन ही रहा !

कविकी पत्नी

कवि कुसुमका अभी हालमें विवाह हुआ था। पत्नी गाँवकी थी और अपढ, पर रूप उसपर बरस पडा था। कवि उसमें लीन था—उसकी ग्रामीणता और अपढताकी ओर ध्यान देनेका समय अभी उसे न था। आज रूपकी लहरोंमें तैरकर उसने एक मदभरा गीत लिखा था और वही आज उसने नगरके दीपोत्सवमें पढा था। निर्णायकोंने उसे सर्वश्रेष्ठ ठहराया और प्रतिस्पर्द्धाका विशाल कप उसे भेंट किया।

उत्साहमें भरा कवि घर आया और चमत्कार-सा वह कप पत्नीके सामने रख दिया। पत्नी खिल उठी। उसका अन्तर उसके प्रश्नमें मुखरित हो उठा— 'कहाँसे लाये हो यह? बडा सुन्दर है।'

कविका मुख दीप्त हो उठा—"जीतकर लाया हूँ इसे।'

पत्नी शोक-सागरमें डूब गई। उसके मनकी व्यथा उसकी वाणीमें फूट पडी—"तब तो किसी दिन तुम मेरा जेवर भी डुबा दोगे!

"क्यों?" कविने विस्मयसे पूछा।

"और क्या? आज जीतकर यह खेल लाये हो, कल मेरा जेवर दाव पर रक्खोगे। आज जीत है तो कल हार है।"

उसकी भ्रुकुटियोंमें क्रोध और आँखोंमें आँसू भर आये।

"मैं जुएँमें जीतकर यह नहीं लाया पगली!'

उत्सुक हो, वह पूछ बैठी—"फिर और कहाँसे जीतकर लाये हो?"

(कविताका अर्थ पत्नी समझ नहीं सकती)

"कुश्तीमें जीतकर लाया हूँ", कविने कहा।

ऐं! कुश्तीमें!!" उसने पतिके सूखे हाथ और पतले पैर देखे और पूछा—"अच्छा, तुम कुश्ती भी लडते हो?"

"हॉ खास तरहकी कुश्ती लडता हूँ ।"

पत्नी फिर विषादकी मुद्रामें स्थिर हो गई ।

कविने कहा—"क्यो अब क्या हुआ ?"

"हुआ क्या, तुम मुझे खोओगे किसी दिन ।"

"क्यो ? कुश्तीमें तो जेवर नहीं जाते ।"

"जेवर नही जाते तो क्या, हाथ-पैर तो टूटते है ।

"न मै जुआ खेलता हूँ, न कुश्ती लडता हूँ । यह सब तो मै तुमसे हँसीमें कह रहा था रानी ।"

"फिर यह कहॉसे जीतकर लाये हो ?"

(कविताका अर्थ पत्नी समझ नहीं सकती)

"मै गाने लिखता हूँ और लोगोको गाकर सुनाता हूँ । खुश होकर वे मुझे इस तरहके इनाम देते है ।"

"खैर गाने जोडनेमें तो कोई हर्ज नहीं । हमारे गॉवमें भी वसी भीवर चौबोले जोडता है । होलियोमें लोग उसे सिर पर उठाये फिरते है । तुम भी चौबोले जोडते होगे ?"

"हूँ ! !" एक मरी-सी ध्वनिमें कविने कहा और पत्नीकी ओर देखा । पत्नीकी ऑखोमें गर्वकी प्रसन्नता फूट रही थी । पतिकी ऑखोमें ऑखे डालकर उसने कहा—"अबकी होलियोमें तुम हमारे गॉवमें चलना । रातको चौपालपर एक चौबोला तुम कहना, एक वसी कहेगा । सच कहती हूँ, बडा मजा रहेगा ।"

सती

दामोदर और झम्मो पति-पत्नी थे। नई-नई उमंगोंसे उभरा दिल लिये उन्होंने अभी-अभी घरकी दुनियामे प्रवेश किया था।

अचानक दामोदरको एक दिन हैजा हो गया। अपनी अन्तिम घडियोंमे उसने झम्मोसे कहा—"यह दस बीघे जमीन है, सारी उम्र तुम्हे रोटियाँ देगी। मै तुम्हे कोई सुख न दे सका। भगवान् करे, अगले जन्ममे भी तुम मुझे मिलो।"

झम्मोने पूरी दृढतासे दामोदरकी ओर देखकर कहा—"अगले जन्मकी इसमे क्या बात है। मै तुम्हारे साथ जो चल रही हूँ।"

दामोदर मर गया। झम्मो सती हो गई। अपनी दस बीघे जमीन उसने प्याऊ और मन्दिरके लिए दान कर दी।

× × ×

गॉववालोंने दोनोंकी अस्थियाँ चुन, एक सती-स्तूप बना दिया। उसके पास ही उग आया एक पीपलका छोटा-सा पेड।

सतीने कहा—"दामोदर, तुम अपने इस नये रूपमे कितने सुन्दर लग रहे हो?"

पीपलने अपनी कोपल बढाकर सतीका स्तूप छू दिया। यह नये जीवनका प्रथम प्यार था।

यों ही सौ साल बीत गये।

× × ×

एक दिन ऑधीमे पीपल गिर गया। सती अब भी ज्यों-की-त्यों खडी थी, पीपल उखला पडा था। लम्बे-लम्बे सॉसोमे उसने कहा—"आज तुम

फिर इकली रह गई झम्मो। हाय, कितने आरामसे रह रहे थे हम लोग!"

दो बड़े-बड़े आँसुओंमे सतीने कहा—"मै अब क्या करूँ दामोदर, तब अपने हाथ-पैरोंपर अपना अधिकार था अब समयका है।"

सतीकी कुछ ईंटे खिसककर नीचे आ गिरी। यह दोनोंकी यात्राके अन्तरका माप था?

पहचान

"मैं अपना काम ठीक-ठीक करूँगा और उसका पूरा-पूरा फल पाऊँगा।"

यह एकने कहा।

"मैं अपना काम ठीक-ठीक करूँगा और निश्चय ही भगवान् उसका पूरा फल मुझे देंगे।"

यह दूसरेने कहा।

"मैं अपना काम ठीक करूँगा। फलके बारेमें सोचना मेरा काम नहीं।"

यह तीसरेने कहा।

"मैं काम-काज और फल दोनोंके झमेलेमें नहीं पडता, जो होता है सब ठीक है, जो होगा सब ठीक है।"

यह चौथेने कहा।

आकाश सबकी सुन रहा था।

उसने कहा—"पहला गृहस्थ है, दूसरा भक्त है, तीसरा ज्ञानी है, पर चौथा परमहंस है या अहदी यह मैं नहीं कह सकता।"

आकाशवाणी

वृद्धकी चाह थी कि बेटा तर्क न करे, उसके इंगित किये पथपर चले, पर बेटेका पथ अपने हृदयकी आकांक्षाओंकी ओर था। हर बातपर दोनोंमें मतभेद रहता। अपनी-अपनी रायमें दोनों ही सही थे!

एक दिन अपनी जरा-विकम्पित गर्दनको प्रयत्नपूर्वक रोकते हुए बूढ़ेने कहा—"मूर्ख, मुझे उपदेश करता है। जुमा-जुमा आठ दिन कल ही तो तू पैदा हुआ था! तब मैं तुझे अपनी गोदमें न लेता, तो मांसके एक लोथड़ेकी तरह गीध तुझसे अपना त्योहार मना लेते!"

प्राचीनताके प्रति भीतर उमड़ी अवज्ञाकी बाढ़को प्रयत्न पूर्वक रोकते हुए युवाने कहा—"मैं नहीं चाहता कि तुम्हारी घिसी हुई अक्लके भरोसे-पर चलूँ। मुझमें उमंग है, साहस है, मैं अपना पथ स्वयं निर्माण करूँगा!"

आकाश दोनोंकी बातें सुन रहा था। उसने अठखेलियाँ करती अपनी तारिकाओंसे कहा—'एकके पास अनुभव है और दूसरेके पास उत्साह पर दोनों ही भटक गये हैं। बूढ़ेकी आँखोंने 'कल' को कहा है पर 'आज'-की शक्तिका अनुभव उसे नहीं हो पाता और युवा देखता है, केवल 'आज'-की ऊँची अट्टालिका, पर उसकी नींव रखनेमें 'कल' ने जो श्रम किया था, उधर उसकी नजर नहीं जाती!'

वृद्ध और युवक एक दूसरेको घूर रहे थे। आकाशकी बातें क्या उन्होंने सुनी?

कलाकारका स्वप्न

[१]

कलाकारके मनमे एक स्वप्न था कि वह एक आदर्श मूर्तिका निर्माण करे। अपनी इसी धुनमे वह रात-दिन लगा रहता और एकके बाद दूसरा प्रयास करता रहता। इन प्रयासोमे उसकी कलाकी प्रगति प्रत्यक्ष थी, पर उसकी प्यास उससे न बुझी। उसके मनमे एक स्वप्न था कि वह एक आदर्श मूर्तिका निर्माण करे। उसका आदर्श इन प्रयासोसे अभी बहुत दूर था। उसने अपने ही हाथो उन प्रयासोको तोड, मिट्टीमे मिट्टी मिला दिया।

एक दिन यो ही दर्पणमे उसने अपना मुँह देखा, तो उसकी दाढीके कुछ बाल सफेद हो चले थे। वह चौक पडा। उसने सोचा—ओह, प्रयासोमे ही यह यौवन बीत चला और मेरे आदर्शकी अभी झीनी झाँकी भी नही सजी!

कुछ क्षण वह स्तब्धतामे डूबा रहा और तब भडभडाकर वह उठा। भीतर ही भीतर अँकुराया कोई राग गुनगुनाते हुए उसने अपने कमरेमे जल्दी-जल्दी और धीरे-धीरे कई चक्कर काटे। उसके पैरोमे नृत्यका उल्लास था, मस्तिष्कमे सागरकी लहरे। सहसा वह ठहर गया और कुछ सोचता रहा। उसकी देह तन गई और बच्चोकी तरह उसने दोनो चुट-कियाँ एक साथ बजाई। एक नई मूर्तिका निर्माण आरम्भ हुआ।

प्रभात और सन्ध्या, दिन और रात, मास और वर्ष, आये और चले गये, पर कलाकारको कलेण्डर देखनेका जैसे अवकाश ही न था। वह जीवित था, पर इस ससारमे न था।

पूरे पाँच वर्ष बाद एक दिन वह उठा। एक मूर्ति उसके सामने थी।

उसने घूर-घूरकर उसे देखा, परखा। उसमे कहीं कोई दोष न था। उसने उसपर दोषोंके आरोपका प्रयत्न किया, पर उसे सफलता न मिली। अपनी इस असफलतापर वह फूल उठा।

अब उसके जीवनका आदर्श उसके सामने था! वह उल्लासकी लहरोंमे तैर चला, पर सशयका एक कॉंटा अभी उसके मनमे चुभ रहा था—'जाने विश्वके पारखी मेरी इस जीवन-साधनाका क्या मूल्य ऑंकेगे ?'

झिझकते-झिझकते उसने कुछ समझदार मित्रोको अपनी कलाकृति दिखाई। वे सन्तुष्ट हुए और निर्णय हो गया कि कल इसे विश्वकी कला-प्रदर्शनीमे रक्खा जाय।

कलाकारने सोचा, कल मेरे जीवनका सबसे महान् दिन होगा। रातमे भी उसे कलाप्रदर्शनीके ही स्वप्न दीखते रहे।

[२]

प्रभातकी किरणे फूटीं, कलाकार जागा और उड़ा-उड़ा अपने कला-कुटीरमे गया। उसने वहॉं जो देखा, वह अविश्वसनीय था। उसने ऑंखे मलीं, बार-बार देखा, पर दृश्यमे अन्तर न आया।

किसीने रातमे उस मूर्तिके टुकड़े कर दिये थे। धरतीपर मिट्टीके नहीं, कलाकारके कलेजेके ही टुकड़े बिखरे पड़े थे। घटनाको हुए युग बीत गया, पर वे टुकड़े फिर एकत्रित न हुए। कलाकुटीरमे आज भी वे ज्यो के त्यो बिखरे पड़े है और कलाकार वहीं बैठा उन्हे प्राय. देखा करता है।

पड़ोसी उसे झक्की कहते है और बच्चे पागल। कभी-कभी कोई पुराना साथी आता है, तो समवेदनासे कह उठता है—"कलाकार, फिर एक बार प्रयत्न करो और नई मूर्ति बनाओ!"

कलाकार उस साथीकी ओर बस सूनी ऑंखो देखा करता है, बोलता कुछ नहीं।

शैतान लडके जो अक्सर उसे झरोखोंसे झांका करते हैं, कहते हैं कि साथीके जानेपर कलाकार आप ही आप बडबडाया करता है—"नई मूर्ति ! . हूँ और नई मूर्ति बनाओ !"

कभी-कभी जोरसे जैसे वह अपने साथीसे कह रहा हो, पुकार उठता है—"है तो यह मूर्ति फिर और नई मूर्ति क्यों बनाऊँ ?"

और बस फिर धरती पर पडे उन टुकडोंकी ओर देखने लगता है। ये टुकडे ही अब शायद उसका स्वप्न है !

सौदा

अपना सर्वस्व पूजाकी थालीमें सजाये-सजोये वह अपने आराध्यके निकट आया।

"मेरे देव, मेरा समर्पण स्वीकारकर मुझे कृतार्थ करो।" प्रेमातुर हो, उसने पुकारा और चरणोंमें झुक गया।

क्षणोंके जाते घडियाँ बन गईं, पर उसके कानोंमें कुछ न पडा। न उसके मस्तकको किसीका स्पर्श ही मिला।

उसने जिज्ञासासे सिर उठाया और भौंचक हो देखा—उनसे एक सौदागर लेन-देनकी बातें कर रहा था और वे उसमें डूबे हुए थे।

एक धमाकेके साथ उसका हृदय टुकडे-टुकडे हो गया।

धीरे से वह उठा और धीमेसे वह चला।

किसीने कहा—"अरे, अपनी थाली तो उठा ले।"

वह बुदबुदाया—"तब मेरा समर्पण भी तो एक सौदा ही रह जायगा।"

टहनियाँ

हरे-भरे कोमल पत्तो और सुन्दर सुमनोके गुच्छोसे लदी टहनियोने तनेसे कहा—"हम कितनी सुन्दर है ?"

प्रश्नकी प्रतिक्रियाको भीतर ही पचाकर, सयत स्वरमें तनेने कहा—"हॉ, वेटी, तुम बहुत सुन्दर हो।"

सौन्दर्यका दर्प इससे तृप्त न हो पाया। वह अपनी महत्ताका स्वीकार तो चाहता ही है। दूसरेकी हीनता-स्वीकृति भी वह आवश्यक मानता है।

"और तुम कितने कुरूप हो जी! काला भूत-सा रग और खुरदरी खाल। छिः!"

प्रतिक्रिया कण्ठतक भर आई। फिर भी अपने को यथासम्भव मसोस-कर तनेने कहा—"हॉ वेटी, मुझमे सौन्दर्य नही है, पर जिस सौन्दर्यपर तुम इतरा रही हो, उसके आधार-रसका भण्डार भगवान्‌ने मुझे ही दिया है। मै उसका जूठन तुम्हे न दूॅ, तो तुम्हारा यह सौन्दर्य कुछ ही पलोमे बिखर जाये!"

हवाके झोकोमे लिपटकर टहनियॉ आकाशकी ओर देखने लगी। फूलोकी कुछ पंखडियॉ झरकर तनेके पास आ गिरी।

क्या टहनियॉ रो रही थी ?

संसारकी साक्षी

दीमकने महीनो मर-मरकर अपने लिए एक घर बनाया—वाशिंग-टनके विख्यात होटलकी ऊँची अट्टालिका-सी, जाने कितनी मजिलोंकी बाम्बी और उसमे अपने नित बढते परिवारके साथ रहने लगा—सुखसे, सुविधासे। उसमें सभीके लिए पृथक्-पृथक् स्थान था। विश्वके कलाकारोंकी अभिरुचिसे अछूती यह बाम्बी एक पूरा ससार था—प्यार और सुखकी कोमल भावनाओंसे भरपूर।

सॉप बेघर था। वर्षामे वह भीगता, धूपमे जलता और धूलमे परेशान होता, एक दिन धीरेसे आकर वह बाम्बीसे बैठ गया। दीमकने अतिथि समझकर उसका स्वागत किया।

सॉपने फुफकारकर कहा—"क्षुद्र दीमक! मुझे तुम्हारी कृपाकी आवश्यकता नही है। मै अपने इस घरमे सुखसे रहना चाहता हूँ। तुम अब अपना रास्ता देखो।"

"तुम्हारा यह घर कहाँ है भाई, यह तो मेरा है। इसे बनाकर अभी तो मेरी थकान भी नही उतरी। मै इसे छोडकर और कहाँ चला जाऊँ?"

सॉपने अपनी दोनो जिह्वाएँ लपलपाईं और दीमकके कुछ सुकुमार शिशुओंको अपने पेटमे रख लिया।

"तुम जाओ जहन्नुममे! और न जाओ तो यही रहो। मै बहुत दिन तक अपने भोजनकी चिन्तासे निश्चिन्त रहूँगा। मुझे तुम्हारे यहाँ रहनेमे भी कोई आपत्ति नही है मेरे दोस्त!'

दो-तीन और शिशुओंको सटककर सॉपने कहा—"ओह, बडे ही स्वादिष्ट है ये बताशे तो!"

× × ×

बाम्बीके बाहर एक बुढिया अपने बच्चेसे कह रही थी—"जोड़ हाथ; नागदेवताकी बाम्बी है यह !'

शैतानियतसे मुसकराकर साँपने दीमककी ओर देखा। दीमक दुःख और क्षोभसे अवभरा हो, बुढियाकी ओर देख रहा था।

असफलता

सुधाकर मूर्तिकार था।

पच्चीस वर्षोतक वह पहाडो, नदियो, खण्डहरो और जाने कहाँ-कहाँ अपनी कला-साधनाके लिए भटकता फिरा। सच तो यह है कि ऐसा कोई कष्ट न था जो उसने नही भोगा, पर न कभी वह थका, न घबराया और यो एक दिन उसकी कला सिद्धिके द्वार आ लगी।

उसने एक पत्थर छाँटा और एक दिन उसपर पहली टाँकी लगाई। इसके बाद तो उसे याद ही न रहा कि कितने प्रभात आये, कितनी राते बीती। वह लगा रहा—लीन रहा और जिस दिन उसने अपने हाथसे अपनी छेनी-हथौडी रक्खी, उसके सामने एक मूर्ति थी।

उसके बाल सफेद हो गये थे, कमर झुक गई थी, आँखे चुँधिया गई थी। इस ठुक-ठुकमे जीवनके पच्चीस वर्ष और बीत गये थे।

राजा एक दिन उधरसे निकला और मूर्तिका मोल पूछने लगा। वह इसे अपने उपवनके फौवारेपर रखना चाहता था।

"तुम्हे वेश्याओमे रहते-रहते हर चीजका मोल पूछनेकी आदत हो गई है राजन्!"

सुधाकरने घृणासे भरकर अपना मुँह फेर लिया।

राजा चला गया।

एक दिन नगरवासी एकत्र हो, उसके द्वार आये। वे सब सम्मिलित प्रयत्नसे उस मूर्तिके लिए मन्दिर बनानेको उत्सुक थे।

सुधाकरने कहा—"हाँ हाँ, ले लो, यह तुम्हारी ही तो है। बनाओ मदिर, मै भी जो बन पडेगा, उसमे मजूरी करूँगा'

"और इसका मूल्य भैया ?" डरते-डरते उन्होंने पूछा।

"मेरी मूर्तिकी पूजा हो, यही मेरी पचास वर्षोंकी साधनाका मूल्य है, नागरिको !" उसने कहा।

मन्दिर हाथों-हाथ उठता गया और उसमें एक दिन उस मूर्तिकी प्रतिष्ठा की गई। सुधाकरका जीवन उस दिन धन्य हो गया। उसे उस दिन ऐसा लग रहा था कि मन्दिरमें मूर्तिकी नहीं, उसकी प्रतिष्ठा हो गई है।

सुधाकर तीर्थ-यात्राको चला गया।

देश-प्रदेश विचरता वह एक वर्ष बाद लौटा, तो दौड़ा-दौड़ा मन्दिरमें गया। मूर्ति अपने स्थानपर विराजमान थी। धूप जल रही थी, प्रदीप प्रज्वलित थे, पूजा हो रही थी। भक्त प्रणत-वन्दनामें लीन थे। मूर्तिपर एक अद्भुत तेज छाया हुआ था।

सुधाकर मूर्तिकी ओर एक टक देखता रह गया। पता नहीं वह किस सीमातक चेतनामें था।

मूर्तिने कड़वी आँखोंसे सुधाकरकी ओर देखा और तभी उसके कानोंमें गूँज उठा यह तीखा प्रश्न—"क्या देख रहा है रे तू ?"

सुधाकर भूला-भूला, लाडमें डूबा-डूबा मूर्तिके पास आ रहा।

तभी गरजकर मूर्तिने कहा—"पापी ! न फूल, न अक्षत, न आरती, न पूजा, पत्थर-सा खड़ा क्या देख रहा है ?"

सुधाकर एक दम स्तब्ध, काटो तो खून नहीं।

फिर भी अपनेको पूरी शक्तिसे सम्भालकर एक बार उसने मूर्तिकी ओर देखा, पर तभी पड़ी उसके कानोंमें यह ललकार—"प्रणाम कर मूर्ख !"

सुधाकरने मुश्किलसे अपनेको समेटकर कहा—"जानती हो, तुम कौन हो ?"

मूर्तिने व्यंगसे हँसकर कहा—"मूर्ख, इतना भी नहीं जानता, मैं भगवान् हूँ !"

ठहरना अब असम्भव था। सुधाकर लौट पड़ा। सीढ़ियोंपर उतरते-उतरते उसने कहा—"हाँ, तू भगवान् है, पर ऐसा भगवान्, जो अपने निर्माताको भूल गया।"

और तब उसने एक लम्बी साँस ली। इस साँसमें उसने स्वयं ही सुना—"ओह, मैं तुम्हें पत्थरसे भगवान् तो बना पाया, पर हृदय न दे सका।"

मध्यस्थ

पुरुषने कहा—"मै शक्तिका अक्षय भण्डार हूँ।"

नारीने कहा—"मै सेवाकी अमल स्रोतस्विनी हूँ।"

पुरुषका अभिमान उमड आया। उसने कहा—"शक्तिका आश्रय ग्रहण किये बिना सेवाका अस्तित्व असम्भव है।"

नारीने नम्रतासे कहा—"यह ठीक है, पर यह भी तो ठीक है कि सेवाका सम्बल सम्भाले बिना शक्ति पैशाचिकताकी छाया है।"

वृक्षसे झरकर एक फूल दोनोंके मध्यमे आ गिरा। उसने कहा—"मैने तुम्हारी बाते सुनी है और मै अपने जीवनके सन्देशसे तुम दोनोमे उठे विवादको शान्त कर सकता हूँ।"

"क्या है वह सन्देश?" दोनों पूछ उठे।

"शक्तिके सौन्दर्य एव सेवाकी सुरभिका सगम ही जीवनकी पूर्णता है।"

नर और नारी दोनो एक दूसरेके निकट हो आये।

और तू !

नाम तो उसके कई है, पर मै उसे लाडमे आदम कहता हूँ।

आजकल उसकी दिनचर्या इस प्रकार है—

सुबहसे सोनेतक वह गगाकी बहती धारमे खूँटे गाडता है। खूँटा रखता है और मूँगरी उठाता है कि उसे ठोके, पर खूँटा है कि वह चलता है।

कभी-कभी वह बाये हाथसे खूँटा पकडे रहता है कि दायेमे उसे ठोके। ठोकता है कि खूँटा नीचे उतर जाता है और वह खिल पडता है कि चलो एक तो ठुका—अब वह आगे बढे, पर तभी देखता है कि सामने ही कुछ दूरपर यह खूँटा उचक आया है और बहा जा रहा है।

यो ही दिन ढल जाता है, रात आ पडती है, आदम सो जाता है। आकाश मुसकराता है, प्रभात फूटता है और आदम अपने खूँटे और मूँगरी लेकर अपनी जगह आ डटता है।

उसकी चाह है कि इस प्रवाहपर खूँटे थमे और वह अपना तम्बू उनके सहारे तानकर आरामसे उसमे सोये। सोये कि सोया ही रहे।

तटपर जाते जो भी उसे देखता है कि हँस पड़ता है और हँस पडता है कि आकाश उससे पूछता है—"और तू ?"

तीन गुच्छियाँ

"बोल, क्या लेगी इन तीनो गुच्छियोका ?"

"तीन गुच्छियोके तीन आने बहूजी, और क्या लूँगी कोई धेली रुपया।"

"दो आने ले, तो रख दे वहाँ तीनो गुच्छियाँ।"

"आप तो राजा आदमी है बहूजी, एक आना आपके हाथका मैल है, तीन ही आने दे दो।"

"ना, ना, मै इन बातोमे नही आया करती। तेरी सौ बार गरज़ हो, तो बेच, नही अपना रास्ता नाप।"

भाभी अपना कसीदा निकालने लगी। यह उसके अन्तिम निर्णयकी घोषणा थी। चमारीने आकुल आँखोसे आकाशकी ओर देखा। सन्ध्या सिरपर मण्डरा रही थी। एक लम्बी साँस छोडकर तीनो गुच्छियाँ उसने एक ओर रख दी। ठनसे दो इकन्नियाँ उसके सामने फेक दी गई। उन्हे उठाकर सुस्त-सी वह चल पडी।

दुखी होकर रमेशने कहा—"तुमने इस गरीबका एक आना लूटकर बहुत बुरा किया भाभी।"

इसमे लूट-खसोटकी क्या बात है। यह तो सौदा है भैया।"

"जी हाँ, यह सौदा है" कुढकर रमेशने कहा—"उस बेचारीने तीन आनेके लिए तीन गुच्छियाँ बाँधी। सन्ध्या न हो आती, तो वह तीन ही आने लेती। अब जाने बेचारीका कौन-सा काम रुका रह जायेगा।"

"ये आसमानी तार न जाने तेरे पास कहाँसे आया करते है।"

रमेशके कहनेसे कालू उसे बुला लाया। एक आना उसे देकर रमेशने कहा—"सच-सच बताओ बहन, दो आने लेकर तुम सुस्त क्यो हो गई थी?"

करुणासे उसका गला रुँध गया। खाँसकर उसने कहा—"बाबूजी! घरमें बीस दिनसे लड़का बीमार पड़ा है और कई दिनसे बताशे माँग रहा है। चलते समय उसे कह आई थी कि बेटा, एक आनेका नमक और एककी मिरच तो लानी ही है। गुच्छियाँ तीन आनेमें बिक गईं, तो तेरे लिए बताशे जरूर लाऊँगी।

अब मैं सोच रही थी कि घर जाते ही वह बताशे माँगेगा और दुःखी होगा। वैसे तो बाबूजी, रोज कहाँ बच्चोंको मिठाई खिलाई जाती है, पर बीमारी-सीमारीमें तो बच्चेका मन रखना ही पड़ता है!"

रमेशने पावभर बताशे मँगवाकर उसके पल्लेमें डाल दिये। आशीर्वाद देती वह इकन्नी लौटा चली गई। मैंने भीगी आँखोंसे देखा, उसका पैर अब जमीनपर नहीं पड़ रहा था—छातीसे बताशे चिपटाये, जैसे वह उड़ी जा रही थी।

अब भी वह कभी-कभी रमेशके घर आती है और उपलों, चनेकी गुच्छियों एवं गन्नोंके रूपमें अपने प्रेमका दान कर जाती है। भाभीकी अब वह एक सहेली-सी है।

पेड़की पीड़ा

यात्री धूपमे दूर से चला आ रहा था। गरमीमे झुलसा, प्यासेसे अधमरा और लम्बी यात्रासे थका-मादा। जाने कैसे मनहूस रास्तेपर वह आज चढ चला कि न कही कोई कुआँ मिला, न छाया, न पडाव और न सहयात्री ही कि सकट सहल होता।

यात्रीको लगा कि वह अब घडी दो घडीमे ही गिर जायेगा और आकाशसे मण्डराते चील-गिद्ध उसे जीतेजी ही नोच खायेगे।

भय उसके मनके चारो ओर कुछ ऐसा छा गया कि चलते-चलते भी उसे लगा कि वह गिर गया है और गिद्ध उसे नोच रहे है।

भयविह्वल हो, उसने ऊपरको मुँह उठाया, तो उसे सामने मोडपर ही एक हरा-भरा विशाल वट वृक्ष दिखाई दिया।

उसमे नया जीवन आगया और उसके गिरते पैर, उचककर उसे वटवृक्षकी छाया तक ले आये।

वटवृक्षके नीचे घनी छाया ही न थी, शीतल जलका स्रोत भी था। पानी पीकर प्राणोमे प्राण आये और पैर पसारकर उसने एक झपकी ली, तो पैरोने बल पकडा। सूर्य ढलावपर आया, धूप हल्की पडी, वह उठकर चलनेको खडा हुआ।

पेडको थपथपाकर उसने कहा—"तुम्हारी कृपाका ऋण मुझपर आजन्म रहेगा, सचमुच आज तुम्हारी गोद न मिलती तो, मै जीवित न रहता।"

पेडने कहा—"ठीक है, मै भी तुम्हे पाकर जी उठा हूँ, धूप और थकानसे तुम्हारी जो गति हो रही थी, वही मेरी इस सुनसान इकलेपनसे। मुझे यह संसार अब तुम्हे पाकर बसा हुआ दीखने लगा है।"

"तब तो तुम मुझे बहुत याद करोगे पीछे ?" यात्रीने कहा, तो सहमकर पेडने पूछा—"क्या तुम जा रहे हो कहीं और ?"

"हाँ, मै तो यात्री हूँ और मेरी मजिल अभी दूर है।" सुनकर पेडके आँसू उमड आये और यात्रीको लिपटते हुए-से उसने कहा—"ना, ना, मैं भला तुम्हे कैसे जाने दे सकता हूँ।"

यात्री हँस पडा जोरसे और तब उसने कहा—"मेरे भोले भाई, जो कहीं मार्गमें रुक जाये, तो वह यात्री कैसा ? हाँ, यह हो सकता है कि तुम मेरे साथ चलो। मै तुम्हें अपने घर अपने बडे भाईकी तरह रक्खूँगा और तुम्हे जरा भी कष्ट न होगा वहाँ।"

"मै कैसे जा सकता हूँ कहीं, तुम देखते नहीं कि मै पेड हूँ!"

"और मै कैसे ठहर सकता हूँ कहीं तुम देखते नहीं कि मै एक यात्री हूँ।"

पेडने कोई उत्तर नहीं दिया, तो यात्रीने एक पैर आगे बढाया और अत्यन्त कोमलतासे पेडकी ओर देखा।

पेड क्रोधसे काँप रहा था।

बहुत ही कडवे होकर उसने कहा—"भूल गये तुम कृतघ्न, कि मै तुम्हे अपनी छाया न देता, तो तुम कभीके मर गये होते।"

भीतर तक मीठे होकर यात्रीने कहा—"मै उस कृपाको कैसे भूल सकता हूँ भाई! विश्वास रक्खो, मै जहाँ भी रहूँगा तुम्हारा यश गाऊँगा।"

कहीं दूरसे आशाकी एक किरण-सी पाकर पेडने कहा—"मुझे यश की नहीं, तुम्हारी जरूरत है, गालियाँ ही चाहे देते रहो, पर मेरे पास रहो।"

यात्रीने कहा—"तुम पेड हो और न चलना तुम्हारी विवशता है। मै यात्री हूँ और न रुकना मेरी विवशता है।"

और यात्री चल पड़ा, चलता ही गया।

पेड खडा सोचता रहा—"मैंने उसे नाशसे बचाया, क्या यही मुझे उसका बदला मिला ? कैसी रूखी है यह दुनिया !"

यात्री चलते-चलते सोचता रहा--"मैं पथके आश्रयोंको यों पकडकर बैठा रहता, तो यहीतक कैसे आता भला !"

पेड अपनी जगह खडा ही रहा ।

यात्री अपनी राह चलता-गया ।

ग़नीमत हुई

राधारमण हिन्दीके यशस्वी लेखक है। पत्रोमे उनके लेख सम्मान पाते है और सम्मेलनोमे उनकी रचनाओपर चर्चा चलती है। रात उनके घर चोरी हो गई। न जाने चोर कब घुसा और उनका एक ट्रक उठा ले गया—शायद जाग हो गई और उसे बीचमे ही भागना पडा।

राधारमण बहुत परेशान है। बार-बार उसके मुँहसे निकल पड़त है—"हाय, मेरी तो सारी उमरकी कमाई चली गई।" वह पागल हुआ जा रहा है। बात हवा पर चढी, पडौसमे फैल गई—पचासो आदमी आ जुटे—एक भीड लग गई।

"अब हुआ सो हुआ। भगवान् और देगा। दुखी मत हो, सन्तोप कर बेटा।" बडेने सान्त्वनाके शब्द कहे।

कई तरुण कण्ठ एक साथ खुल पडे—"राधे! आखिर चला क्या गया?"

"मेरेवाला ट्रक चला गया और देखो, उसके पास ही किशोरीके जेवरका ट्रक बच गया।"

"क्या था तुम्हारे ट्रकमे?" उत्सुकता उमड पडी।

"पुराने मासिक पत्रोकी कतरने और मेरे तीन ग्रन्थोकी पाण्डुलिपियाँ थी। हाय, अब क्या होगा भगवान्!"

बूढोकी आकुलता शान्त हो गई। उन सबकी ओरसे ही जैसे, रमाशकरने कहा—खैर, गनीमत हुई बेटा, कि जेवर बच गया। कागजोका क्या, फिर लिख लेना। तू तो रात-दिन लिखता ही रहता है।"

बिहारी दादाने पूर्ण सन्तोषकी मुद्रामें लौटते हुए कहा—"ले बोल, हम तो घबरा ही गये थे कि जाने क्या दौलत लुट गई !"

राधेने इधर ध्यान नहीं दिया। उसके कलेजेमें कॉटा-सा चुभ रहा था—"खैर गनीमत हुई !" और वह सोच रहा था कि उसके ट्रंककी जगह किशोरी का जेवर चला जाता, तो वह भी यही कह सकता था !

प्रश्नोत्तर

आज दफ्तरमें बडे साहब आये, तो जैसे ज्वालामुखी फट पडी। बात कुछ न थी, किसीका कोई दोप भी न था, फिर भी वे बरस पडे।

एक 'ऐन्ट्री' को देखकर चन्द्रभानसे बोले—"यह डाकखानेकी रकम फुटकर खर्चखातेमें क्यों चढा रक्खी है?" और रजिस्टर उसके ऊपर दे मारा। उसने अपनेको सम्भाला और रजिस्टर साहबके सामने रखते हुए कहा—"इसकी 'डिटेल' देख लीजिये। यह रकम असलमें. .."

बात बीचसे ही थी कि साहब चिल्ला पडे—"रास्केल! जबान चलाता है। सूअर, हमको हिसाब देखना सिखायेगा।"

चन्द्रभान कहता है—मनमें आया, साहबकी नेकटाई पकड लूँ और दो ठोकरें जमाऊँ, पर नौकरी, श्रीमतीजी और बच्चे! खूनकी घूँट पीकर रह गया। साथके चार दूसरे बाबुओंकी भी यही दशा हुई।

पाँच बजे शामको जब दफ्तरसे चले, तो सब खामोश थे, जैसे अपमानकी उस घूँटको पचानेका प्रयत्न कर रहे हो। बडे बाबू अनुभतिकी तीव्रतापर विवश सन्तोप और निर्लज्जताके ताने-बानेसे बुना पर्दा डालते हुए बोले—"क्या करे भाई! इस कम्बख्त नौकरीके लिए सब कुछ सहना पडता है।" जरा रुककर, जैसे अपना मन समझा रहे हो, बोले—"बडा साहब, जबानका बडा ही कडवा है, पर एक बात है—'इन्क्रीमेण्ट'के मामलेमें बहुत ही फराखदिल है।"

टी स्टॉल आ गया और सब चाय पीने लगे, पर चद्रभानके गले वह न उतरी और वह इधर-उधर देखने लगा। सामनेके गोल चक्कर पर कुछ मजदूर अपना झावा लिये बैठे थे। सर्दी बहुत थी, वे सेक रहे थे पत्ते जलाये।

अपमानकी पीडामे उभरा एक प्रश्न चन्द्रभानके सामने आ गया—"मै दफ्तरमें बाबू हूँ और ये मजदूर। मेरा दफ्तर मुझे कोट-पतलून देता है, पर मै इन्हें पहनकर जितना कॉप रहा हूँ, उतने ही ये अपनी फटी चादरे लपेटे कॉप रहे हैं। इस नौकरीसे समाजमे इन मजदूरोकी अपेक्षा हमारी अधिक प्रतिष्ठा है, पर दफ्तरमे तो रोज जूते ही खाने पडते हैं। फिर इस नौकरीमे ही क्या विशेषता है ?"

इसी समय उसके पाससे निकलकर एक नया मजदूर उन मजदूरोमे जा मिला।

"आज कहाँ रास्ता भूल आया भाई ?" एक मजदूरने उससे पूछा।

"आज ठेकेदारका जनाजा निकाल आया। बदमाश माकी गाली देता था। मैने भी आज रोडियोपर डालकर ऐसा रगड़ा कि बेटा तीन दिन हल्दी पियेगा।" अभिमानसे उसका चेहरा खिल रहा था।

"अरे भाई, अच्छी नौकरी थी। यो ही झगडा मोल लिया" पहले मजदूरने समझाया।

"अरे भाई ! दबे क्यो, जब अपनी मेहनतका खाते है ! फिर भाई, रिजकका ठेका तो रहीमने लिया है। नौकरी नही, ता अपना झावा तो है !" स्वावलम्बके भावसे उसका चेहरा भी खिल गया।

चन्द्रभानने मन ही मन अपने प्रश्नका स्वय उत्तर दिया—"बस, दफ्तरकी नौकरीमे यही विशेषता है कि इसे छोडकर आदमी फिर झावा नही उठा सकता !"

लाल बिजार

लाल बिजार गर्राया जवान था। अपने इलाकेमे वह जिधर निकल जाता, आतककी ऑधी आ जाती! अपने खेतसे उसे भगा देनेकी हिम्मत गॉवके किसी लठैतमे न थी। सामनेसे उसे आता देखकर, बडे-बडे लठैत कन्नी काट जाते थे।

बैलगाडी ससारमे उसकी सबसे बडी शत्रु थी। पहियोकी घरघराहट, भगकी घोर और घण्टियोकी मीठी टुन-टुन सुनते ही उसका खून खौल उठता और वह जैसे आपेसे निकल चलता।

उस दिन वह उमगसे दुम उभारे, खडा खेतमे चर रहा था कि ठाकुरकी गाडी उधर आ निकली। गर्दनको गर्वसे उभारकर उसने देखा और दो ही छलॉगोमे वह गाडीके सामने आ गया।

घृणाभरी ऑखोसे बैलोकी ओर देखकर उसने कहा—"तुम मेरी महान् जातिके कलक हो, गुलाम! तुम्हे अपने बलिष्ठ कन्धोपर दूसरोका जुआ रखते शर्म नही आती!"

और एक ही झटकेमे उसने गाडी उलट दी।

× × ×

देहातसे मस्तीमे झूमता, पथ भूला-सा, वह एक दिन राजधानीमे घुस आया और म्यूनिसिपैलिटीमे पकडा गया। लाठियोकी निरन्तर मार और भूखकी ज्वालामे उसकी सारी ऐठ झुलस गई और नाथ बीन्धकर, वह कूड़ा ढोनेकी गाडीमें जोड़ दिया गया।

लालू तडपा, बिदका और मचमचाया, पर धीरे-धीरे उसे गाडीका जुआ, नाथके झटके और हण्टर सभीकी सहतड पड गई।

उस दिन वह बारह पैरोका बोझा अपने चार बलिष्ठ पैरोके बल

खीचे, खत्तेकी ओर जा रहा था कि ठाकुरकी वही गाडी उधर आ निकली। लालूने गाडी और बैल दोनोको देखा और अभिमानकी तीक्ष्णता स्वरमे साधे, नथने फुलाये, उसने कहा—"ठाकुरकी यह छिपटिया-सी गाडी कन्धोपर चिपकाये, क्या इतरा रहे हो? मेरा बोझ तुम दोनोपर भी लद जाय, तो बच्चू, भेजा निकल पडे।"

बैलोकी आँखोमे उपहास फूट पडा—"जीवनका असली तत्त्व तुमने शायद अब समझा है लालू मियाँ।"

योजना

एक है धनपति, एक है निर्धन, दोनो पडौसी। धनपतिकी दो कन्याएँ—बडी शारदा, छोटी सुधा। निर्धनकी एक कन्या—ईश्वरी। सुधा और ईश्वरी सहेली—जैसे जीवनमे सदा ही उन्हे एक होकर रहना हो!

धनपति और निर्धन, दोनो पडौसी, सार्वजनिक कार्यकर्ता और धनपतिकी पत्नी भी महत्त्वाकाङ्क्षी। उस दिन वे बोली—"सोचती हूँ अगले नववर्ष पर पॉच हजार रुपये दे, अपने विद्यापीठका आरम्भ बस कर ही दूँ।"

तीनो लडकियोने उनकी बात सुनी। शारदाने वर्तमानके दर्पणमे भविष्यका एक स्वप्न-सा देखते हुए कहा—"अभी तो नही, पर एक विद्यापीठ मै भी आरम्भ करूँगी और उसे पचीस हजार रुपये दान दूँगी।"

सुधा और ईश्वरी चुप रही, पर दूसरे दिन उन्होने कहा—"हम भी एक विद्यापीठ खोलेगी।"

"अच्छी बात है, पर कैसे खुलेगा आपका विद्यापीठ?" ईश्वरीके पिताने लाडसे पूछा।

जल्दीसे सुधा बोली—"हम दोनो नदीके तटपर किसी गॉवके पास एक पेडके नीचे जा बैठेगी। मै तो एक पेंटिग बनाऊँगी और ईश्वरी एक छ्प्पर शुरू करेगी। पेंटिग जब बन जायेगी तो हम दोनो गॉवमे जाकर वह पेंटिग बिना कुछ लिये ही किसी दूकानपर सजा देगी। इसी तरह तीन-चार पेंटिग बनाकर हम जगह-जगह गॉवमे लगा देगी। इससे गॉवके तमाम बच्चे हमे जान जायेगे और हमारे पास आने लगेगे। हम दोनो उन्हे पढाने लगेगी और छोटे-छोटे पेंटिग बनाकर भी देगी।

बस बच्चोके मा-बाप कहेगे—"कैसी अच्छी है ये लडकियॉ।" वे

हमारा छप्पर जल्दी-जल्दी बनवा देंगे और इस तरह हमारा विद्यापीठ खुल जायेगा।"

सुधा चुप हो गई। छोटी-सी ईश्वरीने कहा—"क्यों पिताजी, है न ठीक बात? आप भी हमारे विद्यापीठमें आया कीजियेगा।"

ईश्वरीके पिताने दोनोंको खींचकर अपनी गोदमें ले लिया। उनकी आँखें बन्द हो गईं और उन्होंने दोनों बच्चियोंको चूम लिया।

सुधाके पिता भी वहीं बैठे थे। उनसे वे बोले—"क्या हमारे राष्ट्रके नव-निर्माणकी सबसे बड़ी योजना यही नहीं है?"

वे भी भावविभोर हो दोनों बच्चियोंको देख रहे थे।

पुरस्कार और दान

सेठ मगनीरामकी पत्नीका आपरेशन सिविल अस्पतालमे क्या हुआ, वहाँ एक मेला जुड गया। प्राइवेट वार्डके दो कमरे तो उन्होने लिये ही थे, उनके सामने एक शानदार शामियाना भी ताना गया। यह शामियाना अपने नीचे बिछी कोच-कुरसियोंके कारण नाचघर-सा हो गया। असलमे यह कुशलक्षेम पूछनेको आनेवालोंके बैठने-उठनेकी व्यवस्था थी। मोटरोकी तो अस्पतालमे नुमायश ही लग गई। सबसे पुराने कम्पाउण्डरका कहना है कि अस्पतालमे ऐसी चहल-पहल तो तब भी न हुई थी, जब ॲगरेज गवर्नरने इसका उद्घाटन किया था।

बडे डाक्टर दिनमे दो बार सेठानीजीके पास आते थे। दो-तीन बार तो उनकी श्रीमतीजी भी समाचार पूछने आई। दूसरे डाक्टर तो समझिये कि उन्हे लिपटे ही रहते थे। कम्पाउण्डरोका तो यह हाल था कि जैसे वे सेठजीके निजी नौकर ही हो।

सबकी साधना सफल हुई और सेठानीजी उठ बैठी। सेठजी तो आज आपेमे ही न थे। उनका हृदय निकलकर फिर अपने स्थानपर लौट आया था। वे धनपति थे। कमाना जानते थे, तो खर्च करना भी।

उन्होने बडे डाक्टरको दो सौ पचास रुपयेका फ्रासका बना चाँदीका एक फूलदान भेट किया और दोनो डाक्टरोको सौ-सौ रुपयेकी घडियाँ।

पाँचो कम्पाउण्डरोको उन्होने दस-दस रुपये दिये और भगी-भिश्तीको दो-दो रुपये।

पुरस्कारके साथ ही सेठजीने दान भी किया। कोई सौ भिखारियोको तेलका एक-एक परॉवठा दिया। और अस्पतालके आपरेशन-रूमको

एक घडी, जिसके डायलपर सेठजीका नाम सुन्दर अक्षरोंमे लिखा गया था।

शामियाना उखाडनेवाले मजदूरोंने जब कुछ मॉगा, तो बडे मुनीमजीने उन्हे डाट दिया कि यह काम शामियानेवाले दूकानदारका है, कुछ हमारा नही।

और सेठजी अपने घर चले आये।

कम्पा और चम्पा

कम्पाके पडौसमें एक पेड जाने कब उगा और पनपकर बडा हो गया, पर जब ढलते पहर उसकी छाया कम्पाके द्वार पडने लगी, तो उसने जाना कि यहाँ एक पेड है और उसके साथ उसका भी कुछ सम्बन्ध है।

पेड क्या, वह सुगन्धका स्रोत था। उसके पत्तोंमें सुगन्ध थी, फूलोंमें सुगन्ध थी, छालमें सुगन्ध थी। पवन उसके पाससे निकलती, तो सुगन्धसे उसका आँचल भर जाता। सच यह है कि जीवनका एक सजीव स्तम्भ-सा खडा, वह सारे वातावरणको सरस किये रहता।

अब उसे कम्पा पानीसे सींचती और बैल-बकरियोंसे बचाती। कभी-कभी अपनी छोटी-सी खटिया, उसकी छायामें डाल वह सुख लेती। पास-पडौसका जो भी उधरसे निकलता, उसमें भर-भर प्रशसा करती, करती ही रहती। धीरे-धीरे सब उसे 'कम्पाका पेड' कहने लगे। कम्पा यह सुनती और फूली न समाती, घरका कामधन्दा छोडकर भी उसके नीचे बैठी रहती।

× × ×

एक दिन कहींसे आकर चम्पाने अपनी झोपडी उस पेडके नीचे डाल दी और रहने लगी। चम्पाकी झोपडीपर पेडकी पूरी छाया रहती और झोपडी हर समय सुगन्धसे भरी रहती। चम्पा उसमें सुखसे रहती। ऐसा सुख उसे जीवनभर न मिला था।

पडौसमें मतभेद पहले और मेल पीछे है। कम्पा और चम्पामें एक दिन अनबन हो गई। दोनोका कहीं कुछ साझा-बाँटा तो था नहीं कि बटवारा हो जाता—उनके युद्धका केन्द्र वह पेड हो गया। कम्पाने चाहा कि

चम्पाकी झोपडी यहाँसे खिसके और चम्पाने यत्न किया कि कम्पाकी खटिया पलभरको भी यहाँ न पडे।

दोनो पेडको अपना कहती, एकमात्र अपना बनाना चाहती, पर दोनों ही क्रोधमे उसकी पत्तियाँ नोचती, छाल खीचती और व्यग बरसाती—कम्पाको तो कभी-कभी इतना क्रोध उभर आता कि चूल्हेसे जलती बटलोई उतार, वह उसपर उँडेल देती और वह तडफकर रह जाता।

पेड दोनोमे मेल-मिलाप करानेकी कोशिश करता, पर युद्ध उग्र होता जाता। वह समझता—मै सोनेकी अँगूठी तो नही हूँ कि जिसने पहन ली, पहन ली। मै तो विशाल वृक्ष हूँ, मेरी छायामे तुम्हारी दो ही नही, दो और भी झोपडियाँ पड सकती है। सुरभि इतनी है कि तुम दोनो उसे समेट नही सकती—दूर-दूर रहनेवालो तक भी वह भरपूर पहुँचती है। फिर लडाई क्यो ? मिलकर रहो, तो वह एक दूसरेकी शक्ति बढ़ाये और वह दोनोके कुछ काम आये, पर इस तरह तो न तुम दोनो सुखी हो, न मै ही।

पेडकी बाते दोनो सुनती, उन्हे ठीक भी बताती, पर मान न पाती। जब-जब वह मेल-मिलापका प्रयत्न करता, एक नया विद्रोह फूट पडता। दोनोका उत्साह युद्धमे बढता रहा, पेडको जीवनमे दिलचस्पी कम होती गई। पहले जो दुःख था, बादमे वही रोग हो गया। पेड़के पत्ते कुम्हलाने लगे, फूल मुरझाने लगे, सुगन्ध बासी पडने लगी और सूखा उसे दिन-दिन घेरने लगा, पर न इधर कम्पाका ही ध्यान था, न चम्पाका।

युद्ध एक दिन पूरे वेगपर पहुँच गया और चम्पा अपनी झोपडीमे आग लगा, कही दूर देशको चली गई। कम्पा अब सूखते पेड़की छितरी छायामे खटिया डाले बैठी रहती है। कभी-कभी वह मीठी बाते कर पेडको सरसता देनेका प्रयत्न करती है, पर भीतर इतना गुबार है कि बात मुड-

तुडकर पुराने युद्धपर चली जाती है और उसका अन्त कडवाहटमे ही होता है ।

कम्पा दु.खी है कि पेड नही खिलता, पेड दुखी है कि कम्पा मुर्झाई है । सुना है चम्पा भी जहॉ है दु.खी है । न किसीको रस दे पाती है, न किसीसे रस ले पाती है । पेडकी ही बाते सोचती रहती है ।

यो एक मर रहा है और दो घुन रहे है, पर मै प्राय. उस पेडको देखता हूॅ, तो सोचता हूॅ दो मूर्खताओंके बीच एक विशालता बलि हो रही है और तभी मेरे मनमे आता है—बलि क्या यह तो वध है ।

तृप्ति और अतृप्ति

[१]

रामा और श्मामा दोनों सगी बहनें हैं। रामाकी उम्र है कोई ६२ वर्ष और श्यामाकी यही कोई ६०के लगभग।

रामा एक नायब तहसीलदारके साथ ब्याही गई थी और अब उसका पुत्र जिलाधीश है। उसके सिरपर उसके पति हैं और गोदमें पोते-पोतियाँ—सुख उसपर चारों ओरसे बरस रहा है।

बुढापा है, शरीर ठीक नहीं रहता, तो नये दिन नया डाक्टर आया ही रहता है। सभी डाक्टरोंसे वह यही कहती है—"मुझे अब जीकर क्या करना है डाक्टर साहब, अब तो यही सबसे बडा सुख है कि शान्तिसे ऑखें मुँद जायें।"

डाक्टर आग्रह और अनुरोध करके दवाकी शीशी दे जाते हैं, लिहाज कर वह ले लेती है, पर शायद ही कभी शीशियोंकी डाट खुलती हो।

पति नाराज होते हैं, बेटा जिद करता है और बहू खुशामद, तो उत्तर मिलता है—"मुझे अब जीकर क्या करना है, अब तो सबसे बडा सुख यही है कि शान्तिसे ऑखें मुँद जायें।"

जीवनका घट सुखके नीरसे परिपूर्ण है। बुढिया डरती है कहीं कोई बूँद धूलमें गिरती न देखनी पडे।

[२]

श्यामा भी आजकल रामाके ही घर है। वह एक तहसीलदारसे ब्याही गई थी, पर छह साल बाद ही वह विधवा हो गई। सुखका देवता द्वार तक आया और लौट गया। दर्शन तो हुए, पर पूजाकी थाली सज न पाई।

बुढापा है, छोटे-मोटे झटके आते ही रहते है, फिर भी स्वास्थ्य बुरा नही है। रामाको देखने डाक्टर आता है, तो श्यामा भी खम्भोकी आड लेती, वहाँ तक आ पहुँचती है और बातो-बातोमे अपनी नब्ज डाक्टरके हाथ थमा देती है।

उसकी मुख्य शिकायत होती है—"डाक्टर साहब, ऐसी दवा दो, जिससे गातमे रक्त बढे। जाने क्या घुन लग गया है कि गात गिरा-सा रहता है।"

डाक्टर जो दवा भेजते है, श्यामा उन्हे नियमसे खाती है और घी-दूधके बारेमे भी कभी असावधानी नही बरतती। बुढ़िया कहलाना उसे भला नही लगता और मृत्युके नामको भी वह अशुभ मानती है।

जीवनका खेत सूखा पडा है। बुढिया सोचती है कौन जाने कब आकाशकी कोई बदली एक फुँहार इधर छितरा दे!

सुराही और प्रतिमा

मनमोहन उस दिन बड़े चावसे एक सुराही खरीदकर लाया। उसमे उत्साह था कि वह अब ठण्डा पानी पियेगा और पास-पड़ौसके लोग भी उसकी सुराहीका ठण्डा पानी पी, अपनेमे कृतार्थ और उसके प्रति कृतज्ञ होगे।

खुशी-खुशी उसने सुराहीमे पानी भरा और चावसे उसने एक बार उसे अपने हाथोपर उठा लिया। पर उसका चाव तो पकेपत्ते-सा झर गया; जब उसने देखा—यह सुराही तो पेन्देमे रिसती है।

वह सुस्त हो गया, पर तभी चुस्त होकर उठा कि चुटकीभर आटा गून्द लाया और उसे उसने पेन्देपर सॉट दिया।

सुराही काम देती रही।

मनमोहन उस दिन बडे चावसे सरस्वतीकी एक प्रतिमा खरीद लाया और उसने उसे विधि-विधानके साथ अपने मन्दिरमे प्रतिष्ठित कर दिया।

उसमे उत्साह था कि अब उसकी साधना निरन्तर गतिशील होगी और पास-पडौसके लोग भी उसकी प्रतिमाका पूजन कर अपनेमे कृतार्थ और उसके प्रति कृतज्ञ होगे।

उसने आरती जलाई और शंख बजाया। चारो ओरसे मै-तू आ जुटे। भक्तिकी सुरभि चारो ओर फैल गई।

पूजाकर पास-पडौसी लौट गये, पर मनमोहन वही बैठा रहा। प्रतिमा औरोके लिए पूजाकी वस्तु थी, पर उसका तो वह जीवनप्राण था। वह उसमे लीन-सा डूब रहा।

✣

बीचमें एक बार वह विभोर हो, प्रतिमाकी ओर उमडा, तो उसे बिजली-सी छू गई। भौंचक हो, उसने देखा—प्रतिमा खण्डित है। उसके पैरकी एक उँगली किर गई है।

वह एकदम शोकके समुद्रमें डूब गया।

अब वह चुपचाप मनमारा-सा मन्दिरमें बैठा रहता है। लोग पूजा करने आते हैं, तो वह प्रतिमाका पैर फूलोंसे ढक देता है। सब उसकी प्रशंसा करते हैं, पर उसका मन नहीं खिलता।

व्यंगसे साथी कहते हैं—"ऐसी प्रतिमाके चरणोंमें बैठकर भी तू सुस्त है अभागे।"

मनमोहन सुनता है, तो उसके कलेजेपर कोई अंगारेकी कलमसे लिख देता है—"ऐसी प्रतिमा।"

❖

कभी-कभी वह आप ही आप सोचता है—सुराहीपर आटा सॉटकर काम चला लिया था, तो क्या प्रतिमापर आटा नहीं सॅट सकता?

फिर वह आप ही आप कराह उठता है—'सुराही सुराही है, प्रतिमा प्रतिमा है।'

वे तीनों

चम्पू, गोकुल और वशी तीनो एक उत्सवमे गये।

वहाँ तबतक कोई न आया था। वे तीनो ही आगेकी कुर्सियोपर बैठ गये। लोग आते गये, नम्बरवार बैठते गये, हाल भर गया।

उत्सव आरम्भ हुआ। सयोजकने सबका स्वागत किया।

तब आये एक महानुभाव अपनी मोटरमे।

उत्सवकी बहती धारा रुक-सी गई और सब उन्हे लेने-लेनेको झपटे।

वे हॉलमे यो आये कि कोई जलूस हो।

सयोजकने आगे झपटकर "उठो"के उद्घोपके साथ ऑखोकी वक्रताका झटका देकर उठा दिया चम्पू, गोकुल और वशीको।

अब उन कुरसियोपर बैठे—वे महानुभाव, उनकी पत्नी और पुत्र। चम्पू, गोकुल और वशी एक ओर खडे ताकते रहे।

तभी उन महानुभावने १११२ रुपयेका चैक सयोजकको दिया। माइकपर इसकी घोपणा हुई और हाल तालियोसे गॅजा।

"ओह, यह बात है!" तीनोने एक साथ कहा और उत्सवसे लौट आये।

चम्पूने सोचा—"ठीक है, मेरे भाग्यमे कुरसी होती, तो मै उस महानुभावके घर न जन्मता।"

गोकुलने सोचा—"लाख घुर्पट रचने पडे, मै लाखपति बनूँगा।"

वशीने सोचा—"चॉदीके गजसे आदमीको नापनेवाली इस समाज-व्यवस्थाके विरुद्ध मै विद्रोह करूँगा।"

और चुपचाप तीनो अपने-अपने घर चले गये।

उनकी वाणी

दो मास बाद चन्दन घर लौटा, तो देखा कि कमरा भूतखाना बना हुआ है। छत और कोने जालोंसे भरे थे और जमीन धूलसे ढॅकी थी। उसने झाड़ू उठाई और जाले साफ करने लगा। जाला टूटते ही मक्कड अपने लम्बे-लम्बे पैरोंसे दौडते और दूसरी जगह चिपक जाते। वह फिर उन्हे झाड़से नीचे गिराता और वे फिर ऊपर दौडते।

थोडी ही देरमे चन्दन थक गया और झल्ला उठा। पॉच-सात झाड़ूके हाथ कसकर उसने मारे, तो मक्कडोकी सारी शेखी धूलमे मिल गई। किसीका सिर फूटा, तो किसीका पैर टूटा। सबके सब जमीनपर ऐसे पडे थे, जैसे ऑधीके आम। आवेशमे उसके मुॅहसे निकल गया—"बदमाशोने मकानमे ऐसा अड्डा जमाया कि जैसे ये हजरत ही उसका किराया भर रहे हो।"

झाड़से एक गत्तेपर बुहार, वह उन्हें बाहर फेकने चला। उसने सुना, वे आपसमे बातें कर रहे थे।

एकने कहा—"पता नही आज कौन दुष्ट हमारे घरमे घुस आया। कितने आनन्दसे रह रहे थे हम लोग!" यह किसी बच्चेकी आवाज थी।

अपने पुराने अनुभवोंको दुहराने-से एक बूढेने कहा—"इसान एक ऐसा राक्षस है कि वह किसीको शान्तिसे बैठे कभी देख ही नही सकता!"

चन्दनको बिजली-सी छू गई और गत्ता उसके हाथसे छूट गया। वह सुस्त लौट आया। पता नही, फिर वे क्या-क्या कहते रहे!

उदार

दीनाकी पुत्रीका विवाह उठा, तो वह दब-सा गया। कुछ न करो, तब भी १००-२०० चाहिएँ, पर पास तो भुनी भाँग नहीं।

दुखियाया-सा वह ब्रह्मचारी जगजीवनके पास गया। पहले भी उन्होंने उसके बिगड़े काम बनाये थे।

सोचकर उन्होंने अपने एक भक्त धनीके नाम सहायताका पर्चा लिख दिया। वे निकटके ही एक दूसरे नगरमें रहते थे।

दीनाने अपने घरकी झाड़-पोंछ की और ५रु० अण्टीमें लगा, वह घरसे निकला। भक्तजी अपनी बड़ी हवेलीके बाहर बैठे थे। परचा देखकर बोले—"हाँ, हाँ, बड़ी सुन्दर बात है। कन्यादानसे बड़ा कोई पुण्य नहीं। लड़कीके हाथ पीले हो जायेंगे और तुम गंगा नहा जाओगे। हम भी जरूर जो होगा करेंगे। कुँवर साहब मसूरी गये हैं। ४-५ दिनमें आयेंगे। तुम सोमवार-मंगलको आ जाना। इस यज्ञमें तो जितने चावल अपने पड़ जायँ, कल्याण ही है।"

दीना शामकी गाड़ीसे घर लौट आया। उसके पाँच रुपये खर्च हो गये थे और हाथ कुछ न आया था, फिर भी वह खुश था। उसकी उम्मीदोंके अश्व कनसरियाँ ले रहे थे।

× × ×

मंगलको दीना फिर चला, तो उसकी जेबमें एक पड़ौसीसे उधार लिये पाँच रुपये थे। वह भक्तजीकी हवेलीपर पहुँचा, तो कुँवर साहब बाहर ही खड़े थे। दीनाके लिए यह मुँह माँगा वरदान था।

दीनाकी बात सुनकर बोले—"हाँ, हाँ, वे कह तो रहे थे, इस बारेमें कुछ मुझसे, पर मैंने ठीक ध्यान नहीं दिया। वे सोमवती अमावस्याका

स्नान करने हरद्वार गये हैं। ४-५ दिनमें लौटेंगे। तुम सोमवार-मगल तक आ जाना। जब हमारे ब्रह्मचारीजीने लिख दिया है, तो कोई बात नहीं। काम हो जायगा तुम्हारा।"

दीना शामकी गाडीसे घर लौट आया। उसपर पाँच रुपये कर्ज हो गया था और हाथ कुछ न आया था। फिर भी वह खुश था। उसकी उम्मीदोंके अश्व अब हिनहिना उठे थे।

× × ×

फिर मगल आया और दीना चला, तो उसकी जेबमें एक सम्बन्धीसे उधार लिये पाँच रुपये थे। वह भक्तजीकी हवेलीपर पहुँचा, तो भक्त जी और कुँवर साहब बरामदेमें बैठे थे। दीनाके लिए यह भगवान्‌का दर्शन था।

उसे देखकर भक्तजी बोले—"अच्छा आ गये तुम। बड़ा अच्छा हुआ। आनन्दसे बेटीको उसके घर भेजो और सुखकी साँस लो। जिसकी बी सुखी, उसका जहान सुखी।"

कुँवर साहबके कानमें भक्तजीने कुछ कहा, तो उन्होंने एक पर्चेपर कुछ लिख, दीनाके हाथमें देते हुए कहा—"लो, मुनीमजीसे रुपये ले लो।"

दीनाके हाथमें पर्चा क्या आया, खजानेकी ताली आ गई। भाव-विह्वल हो, उसने कहा—"आपने मुझपर बडी कृपा की भक्तजी! मैं जन्मभर आपका एहसान न भूलूँगा।"

भक्तजी बोले—"इसमें एहसानकी क्या बात है भाई, यह तो हमारे ब्रह्मचारीजीका हुक्म है।"

वह पर्चा लिये चला, तो धरतीपर उसके पैर न पड रहे थे। सामने ही मुनीमजी गद्दीपर बैठे थे, फिर भी उसने कन-अँखियोंसे पर्चेकी तरफ देखा—उसपर १०१ रुपये लिखे थे। दीनाके अन्तरमें पुत्रीके शानदार विवाहका एक चित्र-सा घूम गया।

पर्चा लेकर मुनीमजीने चाँदीके ११ रुपये उसके सामने रख दिये।

भौंचक हो, उसने पूछा—कितने ?

"ग्यारह रुपये हैं भाई !" मुनीमजीने कहा, तो ग्यारह घण्टे-से दीनाके दिमागमें टन्ना उठे।

"ग्यारह ?" दीनाने इस तरह पूछा कि जैसे सब दिशाएँ एक साथ बोल उठीं।

"हाँ, ग्यारह—दस और एक !"

परचा लेकर दीनाने पढा। उसमें दानखाते ११ रु० देनेको ही लिखा था—अक्षर कतई साफ थे !

दीना खडा था। ११ रुपये गद्दीपर पडे थे। दीना उन्हें देखता, अपने १५ रु० को याद करता और सोचता कि अगले मंगलको बेटीका ब्याह है !

एक प्रश्न

मै एक बहुत बडी मिलमे क्लर्क हूँ और आशा है कि कुछ ही वर्षोमे हेडक्लर्क हो जाऊँगा। समयपर, अच्छा वेतन मिल जाता है और नौकरी छोडते समय अच्छा खासा प्रावीडैण्ट फण्ड और पुरस्कार मिल जायेगा। घरमे मै हूँ, पत्नी है, माँ है, दो बच्चे है। पडौसी भले है, मित्र समयपर काम आनेवाले। कहो कोई अभाव नही है—मै अपनेमे सन्तुष्ट हूँ, पर सुखी क्यो नही हूँ ?

शामको दफ्तरसे निकलता हूँ, तो देखता हूँ कि अंगरेज लोग मस्तीसे उछलते, आपसमे निर्द्वन्द्व दगा करते चले जा रहे है। उन्हे जैसे कोई चिन्ता नही—मस्ती ही मस्ती है। एक दिन ब्राऊनिग कह रहा था—"ओह मि० शारदा, रोटियाँ हम कमा चुके, बस अब कल सुबह नौ बजेतक मौज है और हम है।"

मानता हूँ, ब्राऊनिग ठीक कहता है। सबसे बडी चिन्ता रोटीकी है, वह पाँच बजेतक कमा चुके. अब मौज ही मौज होनी चाहिये, पर मौज कहाँ है ? दफ्तरसे घर ऐसा जाता हूँ, जैसे अपनी माँके 'फूल' हरद्वार लिये जा रहा हूँ।

पत्नी इतनी सुशील है कि सारे पडौसमे उसका कोई जोड नही। सदैव सुखमे लीन, थोडेमे सन्तुष्ट, सुन्दर और सरस। मुन्ना जब सर्दियोमे बीमार पडा तो पाँच सौ रुपये खर्च हुए। कुछ रुपये मित्रोसे भी उधार लेने पडे। जब वह अच्छा हो गया, तो बोली—"जबतक ये रुपये न उतर जायेगे, मै कोई कपडा न लूँगी और हाँ, तबतक या तो दालमे ही घी लेगे, या रोटी ही चुपडेगे।"

ऐसी पत्नीको पाकर कौन असन्तुष्ट होगा ? कह तो रहा हूँ कि

असन्तोष कही है ही नही, पर सुख भी तो नही है। जीवन मशीनके पुर्जेकी तरह घूम रहा है। कही कोई अभाव नही है, कुछ और चाह भी नही है। अपनी सीमाएँ जानता हूँ, और सोचता हूँ, सभी कुछ तो है। फिर भी सुख क्यो नही है? सुख, जो जीवनको ब्राऊनिंगकी तरह मस्तीसे भर दे।

और बस जीवनका यही एक प्रश्न!

मृत्युकी चिन्तामें

अंग्रेजी कब्रिस्तानमें एक बूढ़ी माँ हर शुक्रवारको आती है और अपने जवान बेटेकी कब्रपर फूलोंका एक सुन्दर गुलदस्ता चढ़ा जाती है।

उसका यह बेटा छह साल हुए अपनी भरी जवानीमें स्वर्ग सिधारा था। उसकी इच्छा है कि वह अपने पुत्रके पास ही दफनाई जाय। उसने अभीसे अपने पुत्रकी कब्रके बगलमें अपनी भावी कब्रके लिए स्थान सुरक्षित करा लिया है।

जब शुक्रवारको वह गुलदस्ता चढ़ाने आती है, तो हसरतभरी निगाहोंसे उस जमीनको देख जाती है। कभी-कभी उसके मुँहसे निकल जाता है—"ओह, मेरे ईश्वर! जाने मैं कब यहाँ सोऊँगी!'

बुढ़िया जीती है, पर मृत्युकी चिन्ता ही उसके जीवनका सुख है।

शास्त्रीजी

बडे मजेदार आदमी है श्री मसाराम शास्त्री।

वे कई भाषाओंके विद्वान् है और उनका जीवन एक इन्द्रधनुषी जीवन है, जिसमे अनेक रग एक साथ समाये हुए है।

यो वे सदा अपनी पण्डिताऊ हिन्दीमें बोलते है, जिसमे फारसी-अरबीका बहिष्कार और सस्कृतका शृगार होता है। हॉ, बोलते-बोलते भारतीय संस्कृतिपर बात आ जाये, तो भक्तिकी धारामे बहने लगते है और उनकी हिन्दी शुद्ध सस्कृतमे इस तरह बदल जाती है, जैसे लहरमे लहर!

उनका जीवन एक इन्द्रधनुषी जीवन है, जिसमे अनेक रग एक साथ समाये हुए है। भारतीय सस्कृतिकी शान्तधारामे तैरते-तैरते वे अन्तर्राष्ट्रीय राजनीतिके प्रचण्ड प्रवाहमे कब आ जायॅ, इसे कोई नही जानता। हॉ, यह अक्सर देखा है कि वे शान्तिसे उत्साहमे आ जायॅ, तो उनकी शुद्ध सस्कृत अग्रेजीमे इस तरह बदल जाती है, जैसे कॉटेपर रेल!

उनकी बाते आगे बढती रहती है और जाने कब अन्तर्राष्ट्रीय राज-नीतिसे घरेलू जीवन पर आ जाती है। कमाल यह है कि हम उनकी बाते न समझ रहे हो, तब भी यह समझ सकते है, क्योकि अब वे साधारण हिन्दीमे बोल रहे होते है।

बडे मजेदार आदमी है श्री मसाराम शास्त्री।

डाकू और फ़ौजी

[१]

"बाबूजी, भगवान् आपका भला करे।"

उसने करुण कण्ठसे पुकारा और वह देहका पूरा जोर लगाकर थोडा-सा मेरी ओर घिसट आया।

देह उसकी दुर्गन्धभरी, कपडे लगभग चीथडे और बाल धूलभरे—उसके घुटनोंसे नीचेके पैर उठते न थे, बेकार हो गये थे।

मैंने एक टकनी उसके तामलोटमें डाल दी और साथ चल रहे अपने मेजबानसे कहा—'ओह, कितना दयनीय है बेचारा!'

वे उपेक्षासे हँसे। बोले—"यह जालिमसिंह डाकू है। जाने इस हरामजादेने कितने घर उजाडे भाई साहब! सात वर्ष तक इसने जिले भरको नहीं सोने दिया। जो पुलिसवाला इसके पीछे पडा, उसे ही इसने काना और नकटा करके छोडा।

एक दिन अचानक यह दो फौजियोंके हाथे चढ गया, तो उन्होंने बन्दूकके कुन्दोंसे इसके घुटने तोड दिये। अब बाजारमें घिसट-घिसटकर अपने कर्मोंके फल भोग रहा है।

मेरे भीतर भर गये जालिमसिंह डाकू और बाजारमें घिसटता यह भिखारी और तब यह वाक्य—'हिंसाने हिंसासे हिंसाको लुंज कर दिया कि हिंसा न कर सके और तब समाजमें एक दयनीय भिखारीकी सृष्टि हुई।'

[२]

घर लौटकर भी मैंने उस भिखारीकी चर्चा की, तो मेरे मेजबान बोले—"ऐसे दुष्टोंका यही एकमात्र इलाज है भाई साहब!"

बात अपने घरकी हुई, पर मेरे भीतर यह एकमात्र शब्द उमड-घुमड होता रहा और तब मुझे याद आया वाल्मीकि !

वह भी डाकू था । उसे एक दिन मिले कोई ऋषि । डाकूको ऋषि क्या, राव क्या ? उसने उनपर भी शक्तिका प्रयोग किया । ऋषि डरे नही । उन्होंने उसे ढगसे उसका स्वरूप दिखा दिया और तब वह डाकू ही हो गया स्वय ऋषि !

यह क्या हुआ ? यह अहिंसाकी हिंसापर विजय हुई । तो हिंसा नष्ट कर सकती है, बेकार कर सकती है, अहिंसा बदल सकती है !

मन ही मन मैंने कहा—भाई जालिम, तू यदि अपने पुराने कर्मोपर सन्तोष नही कर सकता, तो वे फौजी भी गौरवके पात्र नही, क्योंकि तू भी समाजमे दयनीयोंकी सृष्टि करता था और वे भी अपनी शक्तिसे समाजमे एक दयनीय ही बना पाये !

शृङ्गार

दिनाक—दिवालीसे दो दिन बाद,

स्थान-इन्दौरका बाजार।

एक बैलगाडी जा रही थी, जिसका एक बैल गहरा लाल और दूसरा चिट्टा सफेद।

सफेद बैल गेरूके छापोंसे चित्रित, कहीं पजा, तो कहीं चुगडेका गोला और कहीं चिन्दनें।

रामनारायण एक भावुक, जो सौन्दर्यका कण भी कहीं पाएँ, तो डूब उतरा चले।

देखकर खिले-खिलेसे बोले—"वाह, क्या रूप आया है इस बैल-बेटे पर।"

सुधाकर धरतीका आदमी। उसने ध्यानसे देखा, तो उसके मुँहसे निकल पडा—"जिसमें अपना कोई रग नहीं होता, उसे जो चाहता है इसी तरह अपने रगमें रग लेता है।"

जरा रुककर उसने कहा—"इस नाटककी दुखान्तता यह है कि दुनिया इस थोपे हुए रगको शृगार कहती है और स्वय रग जानेवाला भी उसपर आँसू या हुकार नहीं, मुसकान ही बखेरता है।"

रामनारायण सुधाकरकी ओर देख रहे थे। सुधाकरने देखा, उनकी आँखोंमें उल्लासका नशा एक बार घिरकर बिखर गया है।

चूहड़

उसका नाम चूहड था।

एक फूटा हुआ लोहेका थाल, पीतलकी एक पतीली, एक कडछी, एक थाली और एक अँगीठी बस यही उसकी सम्पत्ति थी। वह कभी उबले हुए चने और कभी सिघाडे बेचा करता था। उसने अपने जीवनमें कभी कोई कपडा खरीदा या नहीं यह सन्दिग्ध है, उसकी धोती और बण्डीने धोबीका घाट कभी नहीं देखा, इसके लिए कई प्रामाणिक साक्षी मिलते है।

दूकानका किराया देना उसके बसकी बात न थी। वह मण्डीके बाहर एक थडेपर बैठता था। धूप तो शायद उसे लगती ही न थी। बरसातमें पानी पडनेपर वह इधर-उधर बच जाता था।

सप्ताहमें दो बार वह अपने लिए दस-बारह रोटी बनाता। उसकी रोटियाँ नमकीन होती। भोजनमें दाल-शाककी आवश्यकता है, इस सिद्धान्तके वह विरुद्ध था। प्रतिदिन प्रातःकाल दो रोटियाँ खाकर वह घरसे बाहर निकलता और दिन छिपनेके बाद तक पूरा प्रयत्न करनेपर भी जो छटाँक-आधापाव चने बिकनेसे बच रहते, रातमें उन्हें ही खाकर वह ठण्डा पानी पी लेता।

उसका रंग घोर काला था और देह मडचू। उसके शारीरिक सौन्दर्यकी उपमा इंजनके बुझे हुए कोयलेसे दी जा सकती है।

इस साल सर्दी बहुत पड रही थी। चूहड नमूनियेकी झपेटमें आ गया। डाक्टर, वैद्य, हकीमकी उपयोगिता वह मानता न था और साथी उसके थे केवल आकाशके तारे।

तीन-चार दिन बाद तेज दुर्गन्धने मुहल्लेवालोंको उसके मर जानेकी

सूचना दी, पर उसका अन्त्येष्टि-संस्कार करनेकी उत्कण्ठा किसीके भीतर न जागी।

पाँचवें दिन चार कहारोंके साथ पुलिसने चूहडकी कोठरीका दरवाजा खोला। मिट्टीकी एक हँडिया दोनों हाथोंसे छातीपर चिपटाये चूहडका शव पडा था और उसकी खुली आँखें अब भी उस हँडियापर लगी हुई थीं।

हँडियामें रुपये थे, असलमें यह चूहडके सारे जीवनका संकलित अंश था। किरायेपर आये, चार कहारोंके कन्धे चढ़ा चूहड चला गया। पिछले बीसों बरसोंमें चूहडके बारेमें कभी किसीने एक बार भी न सोचा था, पर आज वह सभीके भीतरकी हलचलोंका केन्द्र था।

पुलिस आज खुश थी और पडौसी खिन्न।

उस हँडियामें कितने रुपये थे? चूहडकी कोठरीमें ही जब दीवानजीने वे सावधानीसे गिने तो सत्रह सौ तेतीस थे। "ज्योंके त्यों, बिना गिने" वे कोतवाली पहुँचे और कोतवाल साहबने उन्हें अपने एकान्त कमरेमें गिना—वे पन्द्रह सौ चौतीस थे। "खुदा गवाह है" कोतवालने उन्हें "बिना छुए" बडे दीवानजीको दे दिया कि हिस्सारसदी सबमें बाँट दें। बडे दीवानजीने सबके सामने उन्हें गिना। वे दस सौ चार थे।

चूहडकी चालीस वर्षोंकी कमाई, इस तरह चार घंटोंमें ठिकाने लग गई। जाने आकाशमें बैठा चूहड यह सब देख पाया कि नहीं?

नन्दा

नन्दा कई दिनसे भूखा था—पेटकी ज्वालासे पीडित और रोगसे आक्रान्त। उसने देखा—सेठ रामगोपाल मीठे पूडोका थाल भरे, देवी-कुण्डपर बन्दर जिमाने जा रहे है। गिडगिडाकर नन्दाने कहा—"सेठजी! मै कई दिनसे भूखा हूँ, जान निकली जा रही है। कुछ पूडे मुझे भी दीजिये।"

"अबे भूखा है, तो शहरमे जाकर माँग। ये हनुमानजीके पूडे तुझे कैसे दे दूँ?"

"शहर जानेको हिम्मत नही है सेठजी! बीमारीने मुझे चर लिया है। भूखेकी जान बचानेसे तो हनुमानजी आपपर प्रसन्न ही होंगे।"

"अच्छा रहने दे, मुझे तेरे उपदेशकी जरूरत नही है।"

बड़े प्रेमसे बन्दर जिमाकर सेठजी लौटे, तो देखा—नन्दा रास्तेपर पडा है। घृणाके स्वरमे आप ही आप बोले—"अभी तो बदमाश भूखो मर रहा था, इतनेमे सो भी गया।"

यह सुनकर भी नन्दा नही जागा। जागनेको वह सोया ही न था!

दो घोड़े

स्टेशनपर पंजाब-मेलकी प्रतीक्षामें एक बहुत कीमती गाडी खडी थी और उसके पास ही एक साधारण ताँगा। ताँगेवाला घासकी लच्छियाँ छाँट-छाँटकर घोडेको खिला रहा था और गाडीवान एक शानदार वर्दी पहने, अपनी जगहपर बैठा था।

अभिमानसे हिनहिनाकर गाडीके घोडेने ताँगेके घोडेसे कहा—"अरे, तेरी हालत तो बहुत खराब है। तू रात-दिन जुता रहता है, पीठपर हण्टर बरसते हैं, फिर भी तुझे अच्छा खाना नहीं मिलता।"

"हाँ भाई, मैं दिनरात काममें लगा रहता हूँ और जो भाग्यमें है, खाना भी मिल ही जाता है।"

"क्या खाक खाना मिल जाता है, यह सूखा दूबडा या चरीके फट्टे! मुझे देख, मेरे मालिकने मेरी सेवाके लिए दो सेवक छोड रक्खे हैं। एक मेरे लिए घास लाता है और दूसरा मुझे मलता है। मैं कितना सुखी हूँ!"

मनमें उठी तीक्ष्णताको भीतर ही भीतर हल्का करते हुए ताँगेके घोडेने कहा—"हाँ भाई, तुम बहुत शानदार हो, पर सुखकी बातें न बघारो, मैं तुमसे ज्यादा सुखी हूँ।"

आश्चर्यसे गाडीके घोडेने पूछा—"तू मुझसे ज्यादा सुखी है?" और घृणासे दोहराया—"क्या है रे तेरा सुख?"

"मेरा सुख है मेरा साथी—ताँगेवाला। तुम्हें कुछ भी क्यों न मिले, अपने मालिकके फिर भी तुम गुलाम हो। मुझे यह सुख तो है कि जैसा मैं हूँ, वैसा ही गरीब है मेरा ताँगेवाला और हम दोनों एक दूसरेके सुख-दुःखके साथी हैं।"

"फिर भी मेरी कितनी शान है ?"

"हाँ भाई, जानता हूँ कि तुम बीमार पड़ जाओ, तो डाक्टरोंकी भीड़ जुड़ जाये, पर जानते हो कि मैं बीमार पड़ जाऊँ, तो मेरा साथी खुद बेचैन दवा कूटता फिरे ? इस प्यारके मुकाबलेमें तुम्हारी शानका क्या मूल्य है आखिर !"

गाडीका घोडा हिनहिनाकर चुप हो गया जैसे अपने अभिमानके लिए अपने ही भीतर कहीं स्थान खोज रहा हो।

रसोइयाजी

[१]

श्री अग्रवाल एक रेलवेके मैनेजर थे। शान-शौकतसे रहते और सैलूनमे चला करते। खाने-पीनेके शौकीन थे—अपने बूढे रसोइयेको रिश्तेदारकी तरह रखते। कोई उसकी कभी शिकायत भी करता, तो कहते—"अरे भाई, वह कलाकार है। देखते नहीं, रोज आगमे बाग लगाता है।"

उनका यह रसोइया उनके ही सैलूनसे कटकर मर गया, तो नये रसो-इयेकी दौडधूप शुरू हुई। बहुतसे रसोइये आये और अग्रवालकी कसौटी पर खोटे हो, चले गये। उनका सारा दफ्तर रसोइयेकी खोजमे लगा हुआ था।

एक दिन उनके बडे बाबू एक प्रौढ सज्जनको ले आये। बडी-बडी दाढी-मूछे, माथेपर सिन्दूरका तिलक, कलाईमे डोरीका लच्छा और गलेमे चॉदीमढा रुद्राक्षका बडा दाना, ये भी एक रसोइया थे।

इनका रूप देखकर तो अग्रवाल बहुत बिदके, पर खाना खाया, तो परच गये। रसोइयाजी रख लिये गये और रख क्या लिये गये, वे अपने छौकके कारण, अग्रवालके मनपर छा गये। वे दाल-सब्जीका ही छौक न जानते थे, बातोके छौकमे भी मास्टर थे।

[२]

"रसोइयाजी, खाना आज जल्दी बना लीजिएगा, मै रातमे आठ बजेकी गाडीसे बाहर जा रहा हूँ!' अग्रवालने रसोइयाजीसे कहा, तो वे जल्दी-जल्दी हाथ-पैर धो रसोईमे चले गये, पर थोडी ही देर बाद वे आकर फिर उनके सामने खडे हो गये।

"क्या है रसोइया जी ?" अग्रवालने पूछा, तो बोले—"आप इस गाडीसे बाहर न जाइये।"

"क्यो, क्या बात है ?"

"बस यही बात है सरकार, कि मै इस गाडीसे आपको बाहर न जाने दूॅगा, चाहे आप मुझे मार ही डाले।"

कुछ ऐसी बात हुई कि अग्रवाल उस गाडीसे बाहर न जा सके और दूसरे दिन प्रातः समाचार मिला कि आठ बजेवाली गाडी फ्रटियरसे टकरा गई। दुर्घटना बहुत भयकर हुई, जिससे सैकडो आदमी हताहत हो गये।

अग्रवाल दिनभर अपने कमरेमे पडे कुछ सोचते रहे। शामको उन्होने रसोइयाजीको बुलाकर पॉच सौ रुपये भेट किये और तुरन्त उन्हे नोकरीसे अलग कर दिया।

कमला

रमेश है विश्वविद्यालयका प्रोफेसर और कमला उसकी पत्नी। दोनोका विवाह हुए सात वर्ष बीत गये।

दोनो एक-दूसरेसे कहाँतक सन्तुष्ट है पता नहीं, पर दोनो बराबर साथ ही रह रहे है। साथ ही खाना खाते है और कभी-कभी साथ ही घूमने जाते है, पर रास्तेमे प्राय. चुप रहते है।

रमेश जब विश्वविद्यालय जानेके लिए घरसे निकलता है, तो उसका चेहरा कभी खिला नही होता।

उस दिन जब रमेश कोल्हापुरकी समाज-सुधार-परिषद्‌मे तलाकपर अपना बहुविज्ञापित भाषण दे, घर लौटा, तो पडौसियोने करुणा भरे स्वरोमे उसे बताया—"भाई, तुम्हारे पीछे तुम्हारा घर जल गया। पता नही, आधीरात कैसे आग लगी।"

"ऐं।" रमेश जैसे आकाशसे गिर पडा।

"और हाय, कमला भी न बच सकी भैया, हम लोग आग लगते ही दौडे, पर अफसोस भीतरसे साँकल चढी थी।"

"अच्छा" डूबतेसे स्वरमे रमेशने कहा।

पडौसकी बुढिया रामा दादी कह रही थी—"उसके तो रोने-चिल्लाने-की आवाज भी हमने नही सुनी बेटा।"

"हूँ"—रमेश जैसे भावीके किसी स्वप्नमे उलझ गया था।

जीवनका ज्ञान

बूढेने युवकसे कहा—"तुम अभी बच्चे हो। तुम्हे क्या पता, काम कैसे होता है ? मै दस सालसे सभाका प्रधान हूँ। ओह, इतना विशाल अनुभव ! तुम्हारे हाथोमे मै सभाको छोड दूँ, तो तीन दिनमे तुम इसे चौपट कर दो। यह मेरे जीवनमे नही हो सकता।"

पके पीले पत्तेने उगती कोपलसे कहा—"मै दुनियाका रासरंग बहुत देख चुका। अब तुम यहाँ आरामसे रहो, खिलो और खेलो। मै अब नीचेकी हरी घासपर विश्राम करूँगा।"

युवक आस्तीन चढाये कडुवी आँखोसे बूढेको देख रहा था।

कोपल आँखके प्यालेमे प्यारका रस भरे नीचेकी ओर उडते पर्णको देख रही थी।

बूढेके रजत-केशोमे उसके श्वासोकी संख्या लिखी है।

पर्णकी पीतिमामे जीवनकी बीती सन्ध्याओका इतिहास लिखा है। जीवनको किसने ठीक समझा ?

सुखनन्दन माली

धरतीपर चर्चा थी कि पारिजातका फूल केवल स्वर्गमें ही खिलता है, पर सुखनन्दन मालीको धुन थी कि वह धरतीपर भी खिले।

अपनी बुद्धिपर भरोसा किये वह बरसा प्रयोग करता रहा। उसके प्रयोगोंसे वृक्ष-शास्त्रमें उन्नति हुई, उसे यश मिला, पर उसकी प्यास तो और भी भड़क उठी—धरती पर पारिजात कैसे खिले?

किसीने कहा—कैलाशके योगियोंकी कृपासे यह सम्भव है।

सुखनन्दन कैलाश पहुँच गया और बरसों वह योगियोंकी सेवामें लगा रहा। सेवासे प्रसन्न हो, एक दिन किसी योगीने उसे पारिजातका एक बीज उपहारमें दिया और उसकी विधि भी बताई।

सुखनन्दनकी तपस्याका यह बीज ही वरदान था। वह उसे सम्भाले अपने घर लौट आया और धरती कमाने लगा। बुढ़ापेमें जन्मे पुत्रके सस्कारकी तरह, उमगोंसे भर, उसने वह बीज धरतीकी गोदमें एक दिन रख दिया और जिस दिन उसका पहला अकुर फूटा, वह हर्षसे झूम-झूम गया।

रात-दिन अब सुखनन्दन उस वृक्षमें डूबा रहता। सचाई यह कि वृक्ष ही उसका ससार था।

यों दस वर्ष बीत गये। दस वर्ष पहले सुखनन्दनकी कुटियाके सामने उगा वह अकुर अब एक भरा-पूरा वृक्ष था। ऋतुएँ आतीं और चली जातीं, पर उस वृक्ष पर फूल लगनेका कोई आसार दिखाई न देता।

सुखनन्दन नये-नये खाद देता, नये-नये ढगोंसे उसे बल पहुँचाता, नौलाता-सींचता और देवी-देवताओंकी नई-नई मनौतियाँ मनाता रहा, पर उसपर कभी फूलकी एक फुनगी भी न फूटी।

यों ही कई वर्ष बीत गये। एक दिन घूमते हुए एक तपस्वी उधर आ निकले। सुखनन्दनने अपनी पीडा उनसे कही। वृक्षको योगदृष्टिसे देखकर तपस्वी बोले—"सुखनन्दन, यह वृक्ष तो बाँझ है। तुम्हारी साधना-से यह लहलहा सकता है, फूल नहीं सकता।"

तपस्वी चले गये, सुखनन्दन कुटियाके सामने बैठा रह गया। उसके रोम-रोममें एक कराह थी—हाय, मैंने अपना सारा जीवन एक बाँझ पेडकी सेवामें ही बिता दिया!

मैं जान गया !

मै उस दिन अपने एक मित्रके घर गया, तो देखा वे और उनकी पत्नी आपसमे लड रहे थे। मै अपने मित्रको एक मिठाई मानता था, कोई दस वर्षोंसे हमारा परस्पर सम्बन्ध था, पर आज तो वे कडुवे जहर हो रहे थे।

मै दोनोको शान्तकर, मन बदलनेके लिए अपने साथ घूमने ले चला। मै उन दोनोसे इधर-उधरकी बाते करता, उन्हे हँसाता-बहलाता जा रहा था, पर मेरे भीतर जिज्ञासा मचल रही थी—मेरे मित्रके स्वभावकी मिठासमे, यह नीम कहाँसे आ गया ?

तभी रास्तेमे आ गई एक घडीकी दूकान। हम तीनो उसमे चले गये— मुझे अपनी घडीके बारेमे कुछ पूछना था।

मित्रकी पत्नीके हाथमे सोनेकी घडी थी और उसमे एक सुकुमार फीता, पर उन्होने दूकानदारसे एक नया फीता खरीदकर अपनी घडीमे फिट कर लिया। यह नया फीता बहुत घटिया, मर्दाना और उस घडीके सौन्दर्यको दबा देनेवाला था।

हम तीनो फिर चल पडे, पर मै अब यह जान चुका था कि मेरे मित्रके स्वभावकी मिठासमे यह नीम कहाँसे आ गया !

भिखारी

[१]

उसका नाम था नानक और काम था भीख माँगना। बम्बईकी एक प्रसिद्ध सडकके मोडपर बैठा, वह सुबहसे शाम तक भीख माँगा करता था। उसकी सूरतमे सौन्दर्य न था, पर गलेमे एक लोच थी—हृदयको हिला देनेवाला एक दर्द था। वह बडा मनुष्य-पारखी था। सूरत देखकर मनुष्यके हृदयको पहचान लेता था।

मोटरवालोसे उसे चिढ थी। उन्हे वह पशु कहा करता था। गाडी वालोसे उसे आशा न थी, वह उनकी ओर देखता भी न था। पैदल चलनेवाले सीधे-सादे आदमियो तक ही उसकी दुनियाका दायरा सीमित था।

मोडपर आते ही वह आदमीकी ओर घूरकर देखता और देखकर चुप रह जाता, पर उसका हृदय यदि गवाही दे देता, तो उसे देखते ही वह एक आवाज लगाता—"भूखेको कुछ दोगे बाबा!" और उठकर उसके पीछे हो लेता। उसके माँगनेका ढग इतना करुण एव प्रभाव-पूर्ण था कि वह अपने स्थानसे उठकर फिर पैसा लेकर ही लौटता। पचपन वर्षके भिखारी-जीवनमे उसे एकबार भी निराशाका सामना न हुआ था। सचमुच उसका आकृति-ज्ञान कमालका था।

प्रातःकाल छै बजे आकर वह अपनी जगह बैठता, शामको छै बजे वहाँसे उठता और अपनी गुदडीकी जेबमें हाथ डालकर, भीतर ही भीतर दिनभरकी कमाईका जोड लगाता हुआ किसी ओरको चला जाता।

उसकी यही दैनिक दिनचर्या थी।

[२]

उस दिन बिहारके भूकम्पका भयंकर समाचार पा, सारा देश सिहर उठा था। जगह-जगह सहायता-समितियोंका निर्माण हुआ था। बम्बई ही क्यों पीछे रहता भला।

स्वयंसेवकों और कार्यकर्ताओंकी टोलियाँ धन एकत्र करने निकल पड़ी थीं। दानियोंने उदारता-पूर्वक अपनी थैलियोंके मुँह खोल दिये थे और धनकी वर्षा-सी होने लगी थी।

ऐसी ही एक टोली उस मोड़की ओर भी आ निकली। भिखारी उसे देखकर खड़ा हो गया। मन ही मन उसने कहा—"क्या कांग्रेसका वह झगड़ा फिर खड़ा हो गया है ?"

उसे कांग्रेसवालोंसे प्रेम न था। चिढ़ भी नहीं। वह उनसे उदासीन था। उसका खयाल था कि ये भिखारीको पैसा न देकर उपेक्षा-पूर्ण उपदेश दिया करते हैं। फिर भी वह कौतूहल-वश कुछ आगे बढ़ गया।

"यह क्या हो रहा है भाई ?"

"चन्दा।"

"कांग्रेसके लिए ?"

"नहीं।"

"फिर ?"

"बिहारमें भूचालसे हजारों आदमी मर गये और सैकड़ों गाँव उजड़ गये हैं।"

"अच्छा।"

कुछ सोचकर उसने कहा—"फिर तुम मुझसे क्यों नहीं माँगते कुछ चन्दा ?"

युवकोंके अट्टहाससे वातावरण गूँज उठा।

भिखारी झेंप-सा गया। उसका आत्माभिमान तड़फ उठा। उसने

अपना हाथ जेबमें डाला, पूरे दिनकी कमाई मुट्ठीमें ली और उसे सडकपर एक झटकेके साथ बखेरकर, वह एक ओरको दौड गया।

स्वयंसेवकोंने गिने सवा आठ आने थे।

चौरस्तेपर बिखरी हुई भिखारीकी यह निधि देखकर बम्बईकी ऊँची अट्टालिकाएँ शर्मसे नीचे देखने लगीं। कुबेर अप्रतिभ हो गया।

भिखारीने अपने पास एक पैसा भी न रक्खा था। उसे दूसरे दिन तक भूखे रहना पडा, पर वह प्रसन्न था।

क, कि, की,

क, कि, की, तीनों कहाँ जन्मे, कहाँ पले, पर घटनाओंके मायाचक्रपर कुछ ऐसे चढ़े कि जीवनके मध्याह्नमें एक स्थानपर आ मिले।

तीनों एक ही जीवनके अग। सुखमें एक, दुखमें एक, पर तीनों एक-रस नहीं, क्योंकि तीनमें दोका दृष्टिकोण यह कि टॉक नहीं, जुफ्त और तीनमें दो जुफ्त असम्भव।

तीनों एक ही जीवनके अग, सुखमें एक दुखमें एक तीनों दुखी। सुख है सन्तुलन यहाँ घोर खींचातानी! फिर सुख कहाँ? शान्ति कहाँ?

क कहता है—तुम दोनों ठीक रहे, मैं मिट गया।

कि की सम्मति है—तुम दोनोंका क्या बिगडा, मेरा तो सर्वनाश हो गया। की की घोषणा है—तुम तो फिर भी अपने ठिकाने हो, मैं तो इधर, न उधर।

तीनों अपनी तरफ देखते हैं, अपनी हानिका लेखा जोड़ते हैं, कोई दूसरेकी नहीं सोचता।

लौटनेके मार्ग तीनोंके खुले हैं, तीनों स्वतन्त्र भी हैं, पर लौट नहीं पाते। क्यों बहुत आगे बढ आये हैं, इसलिए?

या लौटनेका मन ही किसीका नहीं होता?

क शायद ममताके कारण और कि, की अपनी प्रतिस्पर्धाके कारण!

तीनों सोच रहे हैं, समझ रहे हैं, मन-मस्तिष्क तीनोंके जाग्रत हैं, पर तीनों ही अपनेको बदल नहीं पाते!

तीनों जीवनकी विडम्बना सह रहे हैं, नष्ट हो रहे हैं, घुल रहे हैं, पर घुलमिल नहीं पाते। तीनों एक ही जीवनके अग, सुखमें एक, दुखमें एक, पर तीनों एकरस नहीं, क्योंकि तीनमें दोका दृष्टिकोण यह कि टॉक नहीं जुफ्त और तीनमें दो जुफ्त असम्भव!

दो साधक

राजीव और सुलोचन दोनो युवक साथी मनुष्यताके उपासक है और यथासम्भव अपना समय मनुष्यताकी सेवामे लगाते रहते है।

उस दिन दोनो किसी दूर देहातसे सेवाकार्य करके लौट रहे थे कि सहसा राजीवने पूछा—"सुलोचन भाई, तुम्हे सेवा-साधनाका कौन-सा स्वरूप प्रिय है?"

उत्तर मिला—"मै चाहता हूँ कि दूसरोके आँसू पोछ सकूँ।"

"और तुम्हे?" सुलोचनने भी पूछा।

उत्तर मिला—"मै चाहता हूँ कि दूसरोके आँसुओमे अपने आँसू मिला सकूँ।"

सुलोचनका मन न भरा। पूछा उसने—"दुखियोका दुःख-निवारण ही तो हमारी सेवा-साधना है राजीव?"

"हाँ, ठीक है सुलोचन" राजीवने कहा—"किन्तु दुखियाको अपनेसे दूर मानकर उसके दुखका निवारण तो अहकार है जैसे कोई धनी भूखेको टुकडा फेक दे।"

"तो फिर सेवा-साधनाकी आत्मा कष्टमोचन नही है?" एक नया प्रश्न उभरा।

उत्तर मिला—"ना, किसीका कष्टमोचन न साधकका काम है और न यह उसके वशमे ही है। साधककी सीमा तो यही है कि वह दूसरेमे भी अपनेको पाये।"

"तब?"

"तब यही कि साधककी सीमा है समवेदना और यही हमारी सेवा-

साधनाकी आत्मा है। दूसरे शब्दोंमें हम दूसरेका दुख कितनी गहराईसे अपनेमें अनुभव करते हैं, यही हमारी कसौटी है।'

"पर बिना साधन और व्यवहारके कोरी समवेदनाका क्या उपयोग है?"

"समवेदना कभी कोरी नहीं होती राजीव, समवेदनासे विकल होकर कुष्ठरोगीके घावोंपर एक फूँक मारनेका, उस अस्पतालके निर्माणसे अधिक महत्त्व है, जो अपने नामपर बनाया गया हो।'

राजीव अब पूरी तरह शान्त था। उसने कहा—"ठीक है तुम्हारी बात, और यही मनुष्यताकी चरम परिभाषा है।"

वे दोनों

भयानक जगलमे वे दोनो मिले—अचानक और खोये-से ।

पुरुषने कहा—"आओ, अब हम साथ रहे ।"

नारीने सिर झुका लिया । पुरुषने उसका कोमल हाथ, अपने बलिष्ठ बाहुमे थाम लिया ।

पुरुषने कहा—"मै कठोर हूँ । आदेश मेरा स्वभाव है और उसके विरुद्ध कुछ सुननेकी मुझे आदत नहीं । क्या तुम मेरे साथ रह सकोगी ?"

नारीने कहा—"मैं कोमल हूँ । जीवनमे उफान लाती भी हूँ और उसे अपनेमे समाती भी हूँ । मै सदा एक ही मुद्रामे स्थिर रहनेवाला पर्वत-का शिखर नही । लहरोमे इठलानेवाली सरिता हूँ ।"

पुरुषने कहा—"तब तुममे मुझे अपना सेवक बनाकर रखनेकी क्षमता है ।"

नारी मुसकराई, पुरुषने उसे भुजपाशमे बाँध लिया ।

दो मेमने !

देवदूत उस दिन दुनियाके बीचसे गुजर रहा था ।

मार्गमे उसे दो मेमने मिले । एक स्वस्थ, एक सुन्दर । ममताके सरल उच्छ्वासमे दोनोको देवदूतने अपनी गोदमे उठा लिया और लाडसे चुमकारा ।

"कितने अच्छे है ये ! ' अपनी सरलतामे उसने सोचा—

"क्यो ये धरतीकी धूलमे लोटते रहे—मै इन्हे अपनी दिव्यसाधनासे स्वर्गकी शक्ति बनाऊँगा ।" उसके भीतर निर्माणकी भावना जाग उठी ।

मेमनोको भी देवदूत बहुत अच्छा लगा । उन्हे ऐसी ममता शायद कभी किसीसे न मिली थी । उन्होने उसे खूब सूँघा, चाटा और दुलराया । उन्होने सोचा—"हम अब इसके ही साथ खेला करेंगे ।"

वह देवदूत था ।

वे मेमने थे !

× × ×

देवदूत मेमनोको स्वर्गकी शक्ति बनानेमे लग गया । मेमने देवदूतको खिलौना मान, जीवनमे खेल चले ।

बरसो बाद, एक दिन दोनोने अपने-अपने कामका हिसाब जाँचा ।

देवदूत दुखी हुआ कि वे मेमने आज भी मेमने ही है । उसकी साधना उन्हे स्वर्गकी शक्ति नहीं बना पाई ।

मेमने झल्लाये कि यह खिलौना नहीं है, कुछ और है ।

देवदूत उठा और स्वर्गकी ओर बढ चला ।

मेमने फिर धरतीकी धूलमे लोटकर मिमियाने लगे ।

आरम्भ

सृष्टिके आरम्भकी बात है ।

उस दिन पुरुषका मन कुछ खिन्न था । हरेभरे पहाड़ों, सरिताकी लहरों, पक्षियोंके कलरवों एवं वनके वैभवोंमें वह उलझ न रहा था । आज वह अपनी ही दृष्टिमें अपूर्ण था । उसका हृदय कुछ माँग रहा था, जिसे वह स्वयं भी न जानता था । वह अपने स्थानसे उठ चला ।

उसने देखा, सरिताके तटपर एक नारी बैठी है । रूपकी सजीव प्रतिमा, पर चिन्तामें डूबी । अनमने भावसे पुरुषने कहा—"क्या सोच रही हो ?"

"यह सरिता इतनी आकुलतासे दौड़ी कहाँ जा रही है ? क्या वहाँ इसकी कोई प्रतीक्षा कर रहा है ?'

इस प्रश्नमें नारीके हृदयकी माँग थी । दोनोंने एक दूसरेको देखा और दोनों साथ-साथ एक वृक्षके नीचे जा बैठे ।

वृक्षने पुष्पवर्षा की । पक्षियोंने मंगलगान गाया ।

भोजन या शत्रु

पार्कमें सड़कोंके किनारे, दोनों ओर विभिन्न वृक्षोंकी पंक्तियाँ हैं और उनके पास-पास फूलोंकी क्यारियाँ। इन्हें सींचनेके लिए उभरी हुई नालियाँ हैं जिनमें ट्यूबवैलसे पानी आता है।

रात हो गई है, पर बिजलीकी मामूली रोशनी पार्कमें है। एक सफेद, बहुत सुन्दर बिल्ली नालीमें चली आ रही है। पैरोंमें सावधानी, कानोंमें सतर्कता—कभी-कभी इसी नालीमें उसे रसगुल्ला-सा मीठा कोई चूहा मिल जाता है।

एकदम वह रुकी—उससे लगभग दो फुट, नालीकी बाईं पटरीपर यह काला-काला क्या है, कोई दो अढाई इंच उभरा हुआ? रोम-रोमकी शक्ति आँखोंमें समेटे उसने देखा।

चूहा! उसका रोम-रोम पुलक उठा। तनी हुई देह जरा ढीली पड गई और उसने अपनी जीभ होंठोंपर फेरी, पर न कम्प, न भागनेका प्रयत्न एकदम स्थिर, यह कैसा चूहा है? वह फिर तन गई और कुछ ही क्षणोंमें फिर ढीली हो चली।

"ठीक, मेरी आँखोंको धोखा, जैसे मैं आपको बिना पहचाने यों ही आगे निकल जाऊँगी! जाने चूहोंके कितने नाटक मैं देख चुकी—तुम्हारी जातिकी सब बदमाशियोंसे परिचित हूँ मैं! अच्छा, आओ, अब तुम्हारा नाश्ता किया जाये।

उसने यह सब सोचा और एक कदम बढी। बढी कि एकदम सन्न! अगर यह साँप हो?

याद आ गया उसे। उस दिन उसकी माँने चूहा समझकर साँपको छेड दिया। पलभरमें वह उसकी पसलियोंको लिपट गया और तब

उतरा, जब वह मिट्टीका ढेर हो गई। माकी कराहमे कितना दर्द था और उसके मुँहसे नीले-नीले कैसे झाग निकल रहे थे !

कई मिनट वह तनी खडी रही। समयने उसे साहस दिया। वह एक पग आगे बढी—"यह साँप नहीं है, चूहा है, ओह, कितना धूर्त !" एक पग उसने और बढाया, पूरी तरह उसे देखा और झपाटेके साथ उसपर पंजा चलाया। उसके पजेको कुछ लिपट गया—गीला-गीला, ठण्डा-ठण्डा।

पलक मारते वह चारो पैर समेटे, धनुष-सी उछली और अपनी जगह आ गई और अपनी जगह आई कि एकदम सीधी तनकर खडी हो गई। पैर आगे-पीछे, पूँछ उठी हुई, गर्दन ज़रा झुकाये, सिर सधा और दायाँ पंजा नये आक्रमणके लिए प्रस्तुत। शत्रुकी ओरसे, पर उसे कोई चैलेज न मिला।

उसने देखा—शत्रुकी ऊँचाई पजेके पहले ही वारमे बिखरकर आधी रह गई है। कुछ क्षण वह इसी मुद्रामे ठहरी, पर उसका दिमाग अपना काम करता रहा। अब वह धीरे-धीरे आगे बढी—शत्रुकी एकदम सीध तक !

'क्या है यह ?' पजेको सूँघकर वह आश्वासन पा गई थी। फिर भी एक बार उसने सोचा और बहुत सावधानीसे, अपना दाहिना पजा साधे, सिर बढ़ाकर, उसने उसे सूँघ लिया। शरीरका तनाव ढीला पड गया और अपने पजेकी चार-पाँच चोटोंसे उसने उसे जमीनमे मिला दिया।

वह गीली मिट्टीका एक ढेला था !

पेंसिल-स्कैच

सुमतिने दसवींमे बी० ए० तक विश्वविद्यालयमे किसीको अपनेसे आगे न जाने दिया—वह सर्वप्रथम रहती आई और एम० ए० के पहले सालमे जितने नम्बर उसने पाये, उन्होंने आखिरी सालमे उसे पछाडनेकी होड करनेवालोंके हौसले पस्त कर दिये।

पढनेमे ही नहीं, बोलनेमे, गानेमे और मिलने-जुलनेमे वह विश्वविद्यालयका चॉद थी।

वह अपने प्रान्तसे दूर, एक दूसरे प्रान्तमे अध्ययन कर रही थी और कभी छुट्टियोंमे भी अपने घर न जाती थी। यो ही उडती-सी चर्चा थी कि वहाँ यौवनके आरम्भमे ही उसके मनपर एक चोट पडी थी।

एम० ए० का दूसरा वर्ष आरम्भ होते-होते चर्चा उडी कि उसके सहपाठी प्रदीपके साथ उसके विवाहकी बात पक्की हो गई है। प्रदीप तो इस बातको साथियोंमे साफ कहता ही था, पर सुमति भी इसका प्रतिवाद न करती थी।

अगस्त आते-आते प्रदीपने एक धनी पुरुषकी कन्यासे अचानक विवाह कर लिया और पत्नीके साथ अध्ययन करने विदेश चला गया।

सुमतिने भी तभी विश्वविद्यालय छोड दिया और जाने अचानक वह कहाँ चली गई। दिसम्बरमे उसके विवाहका समाचार साथियोने सुना और जनवरीमे वह एक दिन विश्वविद्यालयमे आई, तो उसके पति भी साथ थे।

साथियोने आश्चर्यसे देखा कि वे एक अधेड सज्जन है। वे सब एक अलग कमरेमे उसे घेरकर बैठ गये और आग्रहपूर्वक इस सम्बन्धमे नये-नये प्रश्न पूछने लगे।

सुमतिने वहीं बैठे-बैठे एक कागजपर कुछ लकीरें खींची और वह साथियोंकी तरफ उसे फेंक कमरेसे बाहर अपने पतिके पास चली आई।

उस कागजपर बने पेंसिल-स्कैचमें बाईं तरफ एक पुराना बडका पेड था और दाईं तरफ एक लडका गैसका गुब्बारा उडा रहा था!

असन्तोष

मैंने उन्हें पहली तारीखको १०० रुपयेका नोट दिया कि वे महीनेभर-को उसे अपना जेबखर्च समझें।

मुन्नी जब प्रतिदिन स्कूल जाती तो मेरे पास आती और उसे एक इकन्नी दे देता। इस तरह एक महीनेमें उसने एक रुपया पन्द्रह आने लिये।

महीनेके अन्तमें मुन्नी मुझसे सन्तुष्ट थी, पर वे असन्तुष्ट। उनका असन्तोष यह था कि मैंने उनकी उपेक्षा की और उन्हें प्रतिदिन इकन्नी नहीं दी।

झरना हँसा

झरना बहा जा रहा था, जाने किधर, जाने क्यों ?
गाँवकी एक किशोरी आई और उसने अपना कटोरा भर लिया।

तभी आई एक दुलहन उसने अपना घडा भर लिया।

किशोरीने देखा—दुलहन घडा भरे सामने दूसरे तटपर खडी है।

तभी उसने देखा—उसके हाथमे एक छोटा-सा कटोरा ही है। घृणासे उसने झरनेकी ओर देखा और तब क्रोधसे कहा—"तुम बडे बेइन्साफ हो जी !"

"क्यो, क्या बात है ?"

"देखते नहीं कि उस दुलहनको तो तुमने इतना पानी दिया कि वह बोझमे दबी चले और मुझे दिये ये चार चुल्लू !"

किशोरीने क्रोधसे जलकर अपने कटोरेका पानी धरतीपर फेंक दिया।

झरना कुछ कहनेको ही था कि किशोरीके पास एक भिश्ती आकर खडा हो गया और उसने अपनी भारी मशक पानीसे भर ली।

झरनेके अट्टहाससे सारा दिङ्मण्डल गूँज उठा।

किशोरी अपना खाली कटोरा लिये खडी थी, दुलहन घडा और भिश्ती मशक।

दो बहनें

रामो और गोविन्दी दो सगी बहनें हैं, पर दोनोंके स्वभावमें दूरका अन्तर है।

रामोमें सादगीकी सरसता है, गोविन्दीमें दम्भकी चास है। रामो-की भोली आँखोंमें प्यारका निर्मल रस है, गोविन्दीकी चपल आँखोंमें नम-कीन बाँकपन।

इन्हीं सरदियोंमें दोनोंकी शादी भजन और बलदेवासे हुई है। ये दोनों रेलवेके नये कुली हैं।

भजन जब अपना लाल कुरता और नीला साफा सम्भालकर आधी-रात पंजाब मेलपर जानेको उठता है, तो रामो नीची आँखों धीमी आवाजमें कहती है—"अब क्या करोगे जाकर, दिनभर मेहनत करके थक जाते हो। रातदिन मारामार करके चुपड़ी खानेसे दिनभरकी राजी-खुशी मेहनतमें रूखी खाना कहीं अच्छा है।"

बलदेवा जब गोविन्दीकी सुरमीली आँखोंमें आँखें डालकर अँगड़ाई लेने लगता है, तो वह कहती है—"अँगड़ाइयाँ क्या तोड़ रहे हो, जाओ मेल देख आओ। खाली दिनकी कमाईमें क्या होता है। महीनेमें खा-पीकर चार रुपये बचेंगे, तो एक धोती आ जायेगी।"

रामो और गोविन्दी सगी बहनें हैं, पर दोनोंके स्वभावमें दूरका अन्तर है।

धन्नू भगत

उनका नाम तो है धनपत राय, पर सब उन्हें कहते हैं धन्नू भगत। अब तो यही नाम समझिये उनका।

तिमंजिली हवेली है उनकी और लोग कहते हैं, लाखों रुपये उनके पास हैं।

कोई दूकान या व्यापार वे नहीं करते, फिर यह धन कहाँसे आया उनके पास, यह प्रश्न सदैव उनके चारों ओर घूमता रहा है। वे स्वयं भी अपनी सुख-समृद्धि स्वीकार करते हैं और हाथ जोड़कर, सिर झुकाकर और आँखें आधी मूँदकर वे कहते हैं—सब सन्तोंकी कृपा है।

साधु-सन्तोंके वे सेवक हैं। लालनाथकी कुटियापर वे नित्य सुबह-शाम जाया करते हैं और वहाँ जो साधु-महात्मा नये या पुराने हैं, सबकी आवश्यकताएँ पूछकर उन्हें पूरा किया करते हैं। किसीके लिए रजाई, तो किसीके लिए मिरजई, किसीके लिए कौपीन, तो किसीके लिए चादर उनके यहाँ बनती ही रहती है। दो-चार मूर्तियोंकी भोजन-भिक्षा तो उनके घरका नित्य-नियम ही हो गया है।

अपनी जानको जोखममें डालकर भी वे साधुओंका धन अपने यहाँ धरोहर रख लेते हैं और उसे किसी काममें लगा देते हैं। इससे वह धन बढ़ता ही रहता है।

बहीखातेमें भगतजी बड़े स्पष्ट हैं। जब यात्रा करते-करते कभी वे स्वामीजी फिर नगरमें आते हैं, तो भगतजी उन्हें बहीका वह पन्ना अवश्य दिखा देते हैं, जिसपर उनका हिसाब लिखा होता है। स्वामीजी खब देख लेते हैं कि मूलधन तो जमा है ही, उसका सूद या लाभ भी उसमें जमा है।

रुपया तो भगतजीके हाथमे होता नही, पर वे सन्तोका कष्ट भी नही देख सकते, इसलिए जाते समय १०–२०–५० रुपये अपने पाससे उन्हे दे देते है। इस तरह यह हिसाब तब तक चलता ही रहता है, जब तक स्वामीजी मुक्त होकर भगवान्मे लीन नही हो जाते।

साधुसन्तोका उनमे अखण्ड विश्वास है। वे मानते है कि यदि हम हजार कोससे भी भगतजीको लिखते है, तो तुरन्त रुपया डाक-तारसे पहुँच जाता है। इस तरह भगतजीकी बहीमे सन्तोका धन ही नही, मन भी सुरक्षित है।

भगतजी साधुओंको ईश्वरका ही स्वरूप मानते है और प्रातः कहा करते है—सन्तोकी कृपासे राईका पहाड हो जाना भी सम्भव है।

भगतजीके पिताजी ठाकुरद्वारेकी प्याऊपर पानी पिलाते मरे, पर आज धन्नू भगतकी हवेली तिमजिली है और लोग कहते है उनके पास लाखो रुपये है।

छोटे वृक्ष

विशाल वृक्षने, अपनी छायामे खडे और अपनी महानताके प्रभावमे सकुचे-झुके-से कुछ छोटे वृक्षोकी ओर देखकर कहा—"मै कितना विराट् हूँ और तुम कितने क्षुद्र !"

छोटे वृक्षोने कहा—"हाँ, हम छोटे है और तुम विराट् हो, पर जानते हो, तुम हमारे कलेजेका रक्त पीकर ही इतने विराट् हुए हो !"

बडे वृक्षका दिमाग झन्ना उठा। घृणाके स्वरमे उसने कहा—"तुम्हें मैने अपनी छायामे आश्रय दे, सूर्यकी जलती धूप और बादलोकी बौछारोसे सदा बचाया। इस उपकारके बदले, यह जीभ लपलपाते तुम्हे शर्म नही आती कृतघ्न !"

छोटे वृक्षोने कहा—"जी हाँ, आपके उपकारोसे हमारा रोम-रोम दबा हुआ है और हम आपके बहुत ही कृतज्ञ है कि आपने सदैव हमारा भोजन स्वय ग्रहण कर, हमे अजीर्णका शिकार होनेसे बचाया !"

व्यगके इस पैने प्रहार पर विशाल वृक्ष हुकारकर रह गया।

क्यों रो रहे हो ?

कलाकारने न दिनको दिन समझा, न रातको रात। न उसे भोजनकी चिन्ता रही, न नींदका ज्ञान। वह यह भी भूल गया कि संसारमें कहीं कोई उसका सगा-सम्बन्धी भी है। अपनी छेनी और हथौड़ी लिये वह जुटा रहा एक पत्थर पर।

हाँ, संसारके लिए वह पत्थर ही था। एक पत्थर, जैसे और हज़ारों-लाखों, पर कलाकारकी तो दुनिया उसीमें समाई हुई थी।

यों ही चार-पाँच साल बीत गये। वह पत्थर अब एक प्रतिमामें बदल गया था, जिसके ओठोंपर स्वर्गकी मुस्कान, जिसकी प्रकृतिमें पृथ्वीकी आत्माका प्रतिबिम्ब।

वह अपनी इस कृतिको देखकर स्वयं मुग्ध हो गया—जिस छोटे-से गाँवमें वह रहता था, वहाँ उसकी कलाको परखनेवाला और था ही कौन ?

वह अपनी कलाको अन्तिम स्पर्श दे ही रहा था कि युद्ध छिड़ गया। एक विदेशी सत्ताने उसके देशके सम्मानको चुनोती दी थी। कलाकारकी देशभक्ति जागृत थी, उसने छेनी रख दी और बन्दूक उठा ली। अपनी प्रतिमाको अपने घरमें बन्दकर, वह सिपाहीका वेश साजे, रणभूमिमें जा उतरा।

युद्धकी संघर्षमयी घड़ियोंमें जब जरा-सा भी विश्राम उसे मिलता, वह अपनी प्रतिमामें डूब जाता। उसके कन्धोंके उभारमें जरा-सी खराश दूर करनी है। वक्षपर जरा-सा उभार देना है। बाहुकी मछलियोंमें एक हल्का-सा गोलाव छूना है। मस्तकपर भी जरा चिकनाई लानी है। वह सोचता और सोचता ही रह जाता।

युद्ध समाप्त हुआ कि वह घरकी ओर लपका। सारी राह वह अपनी

प्रतिमाके ही ध्यानमें डूबा रहा। गाँव दीखा कि उसका दिल उछलने लगा।

गाँवके गोरे वह पहुँचा, तो उसे अपने कुछ पड़ौसी मिले।

एकने कहा—"भाई तुम्हारा घर तो इस बरसातमें गिर गया।"

दूसरेने कहा—"उसका सब सामान भी नष्ट हो गया।"

"और मेरी प्रतिमा ?" विह्वल हो उसने पूछा।

"वह तुम्हारा पत्थर ?" कई कण्ठ एक साथ खुले।

"हाँ, वह तो सुरक्षित है ?"

"हाँ, वह तो सुरक्षित है।"

कलाकारका काला पड़ गया चेहरा फिरसे चमक उठा।

"तुम्हारा वह पत्थर बड़े कामका है भैया!" तभी एक पड़ोसीने कहा।

कलाकार खिल गया—"अच्छा, अब तुम लोग भी उसका मूल्य समझ गये ?"

"हाँ भैया, मैंने उसे उठाकर कुएँ पर डाल दिया था। अब गाँव भरकी स्त्रियाँ उसपर कपड़े धोया करती हैं।"

दूसरा पड़ौसी उत्साहसे बोला—"सारे गाँवको उससे आराम है। पहले अपने गण्डासे और खुरपे तेज करनेको हमें नदीके पुलपर जाना पड़ता था। अब हम तुम्हारे पत्थरपर रगड़ा देकर ही पैना लेते हैं। बहुत ही अच्छा पत्थर है तुम्हारा।

तीसरा बोला—"भैया, अब हम तुम्हें नहीं देंगे उसे, अब तो वह हमारा हो गया है।"

कलाकारकी आँखोंसे तभी दो बड़ी-बड़ी बूँदें टपक पड़ीं।

पड़ोसी पूछ रहे थे—"क्या भैया, तुम रो क्यों रहे हो ?"

दिनचर्या

सेठ चमनलाल भक्त-आदमी है। माथेपर चन्दन और गलेमें माला, यह जैसे उनका ट्रेडमार्क है। मिलते ही सबको हाथ जोडते है और मुसकराकर कहते है—जय सियाराम, जय सियाराम। किसीके घर सुख हो या दुख, दौडकर जाते है और हजार काम हो, दो घडी बैठे विना नही आते। उनके स्वभावने उनका नामकरण ही भक्तजी कर दिया है।

सारे दिन भक्तजी काममें लगे रहते हैं। बुढापेमे भी कितना पुरुषार्थ है उनमे!

सुबह उठते ही जगलमें चींटियाँ जिमाने जाते है। वहाँसे आकर अपने दीवानजीको नई नालिशोंका मसविदा लिखाते है। रोज बेचारोंको दो-चार नालिशे करनी ही पडती है। आजकल कोई लेकर फिर देना ही नही चाहता। भक्तजी हमेशा सो देकर दो सौ लिखा लेते है। न लिखायें, तो क्या करे खर्चा बहुत पडता है और भागते-भागते कारिन्दोंकी चप्पले घिस जाती है।

फिर अपनी गद्दीपर बैठे राम-नाम जपते रहते है।

तीसरे पहर गोशालामें जाते है और अपने सामने गौवोंको घास-दाना खिलवाते है। कर्मचारी बडे बेईमान है। वे कम्बख्त गोमाताके भागमेंसे भी हडपना चाहते है।

गोशालासे लौटकर भक्तजी मन्दिरमें पूजा-कीर्तन करते है और तब भोजन कर अपनी भीतरकी बैठकमें जा बैठते है। वहाँ शहरके कसा-इयोंसे लेनदेनकी बाते करते है। इन बेचारोंको भक्तजी रुपया उधार न

दें, तो बेचारोंके बालबच्चे भूखों मर जायँ । भक्तजीकी दया सम-दर्शी है ।

बैठकसे उठकर वे अपने पलगपर जा लेटते है और राम-नाम जपते हुए ही सो जाते है । सेठ चमनलाल भक्त आदमी है । लोग दूरसे देखते ही उन्हे हाथ जोडते है ।

लारी और बैलगाड़ी

"पो पो, ऐ ! हटो आगेसे । कच्चेमे चलो । तारकूलकी यह काली सडक तुम्हारे लिए नही है !"

अभिमानके स्वरमे लारीने बैलगाडीसे कहा । नम्रतासे बैलगाडीने उत्तर दिया—"बहन, यह तो काफी राह पडी है, तुम ही जरा बचकर निकल जाओ ।"

लारीका क्रोध भडक उठा । डपटकर उसने कहा—"जवाब देती है बदतमीज, हट आगेसे, मुर्दे बैलवाली ।"

व्यगकी मुद्रामे बैलगाडीने कहा—"हॉ, हॉ, तुम बडी रूपसी हो बहन, पर किया क्या जाये, आखिर तुम लोहा ही हो और मेरे इन मुर्दे बैलोमे धड़कता जीवन है ।"

लारीके अभिमानको यह गहरी ठेस लगी । क्रुद्ध सर्पिणीकी भॉति वह फुकारी—'पो, पो !'

बैलगाडीने प्यारसे कहा—"बहन, तुम दुखी न हो । लो कच्चीपर मै ही चल लूॅगी । तुम खुशीसे इकले ही पक्कीपर चलो । कुछ भी हो, तुम परदेशी हो और आजकल मेरे देशमे मेहमान हो । मेरे लिए यह उचित नही है कि मै तुम्हारा मन मैला होने दूॅ, पर बडी बहनके नाते मेरी इतनी बात तुम भी मान लो कि मेहमानके लिए भी यह उचित नही है कि वह मेजबानके घरपर कब्जा कर ले और उसे डाटे ।"

अत्यन्त निर्लज्जतासे लारीने कहा—"तुम्हारी जाति मूर्ख है, जो इसे अनुचित समझती है । हमारी जातिमें तो यह नीति-पूर्ण वीरता ही समझी जाती है ।"

बैलगाडीपर धूल उडाती लारी आगे निकल गई । इसी समय बैल-गाडीकी घण्टी टुनटुना उठी । यह शायद उसके हृदयका निःश्वास था ।

मनुष्य

शिष्यने श्रद्धासे नम्र हो प्रश्न किया—

"मनुष्य क्या है ?"

आचार्यने प्रसन्न हो, उत्तर दिया—"मनुष्य मिट्टीका एक लौन्दा है, जो न जाने कब कहाँ भुर जाये।"

शिष्यने उत्सुक हो पूछा—"फिर राम और कृष्ण, बुद्ध और महावीर, ईसा और गान्धीका इतना महत्त्व क्यों है ?"

आचार्यने कहा—"प्रेमकी व्यथाने उन्हे मनुष्यकी मरतासे देवताके अमरत्वमे अधिष्ठित कर दिया है, इसलिए।"

शिष्यने कहा—"समझा आचार्य, प्रेमकी व्यथामे अणुको विराट् करनेकी क्षमता है।"

तीन मित्र

तीन मित्र अलग-अलग राधामोहनके पास आये और तीनोंने उसकी नई पुस्तककी प्रशसा की।

एकने कहा—"आप इस पुस्तकसे अमर हो गये।" दूसरेने कहा—"ऐसी पुस्तक पहले कभी नही देखी।" तीसरेने कहा—"आपकी पहली पुस्तकोसे यह निश्चय ही श्रेष्ठ रही।"

उनके जानेके बाद राधामोहनने कहा—"इनमे एक था खुशामदी, दूसरा बेवकूफ और तीसरा आलोचक।"

किसके चरणोंमें ?

एक शक्तिशाली पत्रकारने अपने पत्रमें किसी नागरिक प्रश्नपर एक जोरदार लेख लिखा। वातावरणमें उससे हड़कम्प मच गया और अत्याचारी क्रोधसे काँप उठे। चर्चा रही कि पत्रकारको कानूनके शिकंजेमें पीसनेके लिए जाल बुना जा रहा है। रोज नई खबरें उड़तीं, पर अन्तमें वे सब अफवाह बन कर ही रह गईं।

एक दिन जिलाधीश किसी सभामें पत्रकारसे मिले। इधर-उधरकी बातोंके बाद धीरेसे बोले—"मैं आपका बहुत सम्मान करता हूँ और मैं नहीं चाहता कि मेरे समयमें आपको कष्ट हो। इसलिए उस लेखपर सरकारी वकीलने मुकदमा चलानेकी बात कही, तो मैंने उसे डाट दिया।"

एक चायपार्टीमें सरकारी वकीलने धीरेसे पत्रकारके कानमें कहा—"मैं आपका बहुत सम्मान करता हूँ, इसलिए जिलाधीशने आपके लेखपर केस तैयार करनेकी बात कही, तो मैंने उसे डाट दिया।"

पार्कमें एक संस्थाके प्रधान मिले, तो पत्रकारसे बोले—"जिलाधीश और सरकारी वकील आपके लेखपर केस चलानेकी तैयारी कर चुके थे, पर मैंने दोनोंसे साफ कह दिया कि केस चला, तो उसके विरोधमें मैं आम-जल्सा करूँगा।'

कृपापर कृतज्ञ न होना कृतघ्नता है, पर पत्रकारकी परेशानी यह है कि वह अपनी कृतज्ञताके पुष्प किस उपकारी प्रतिमाके चरणोंमें चढाये?

बन्दूक़

फौजकी एक टुकडी चली जा रही थी—क्विकमार्च। तीन साथियोंने उसे देखा।

पहलेने कहा—कितनी शानदार यूनीफार्म है।

दूसरेने कहा—हमारे सिपाही कितने सबल सुन्दर है।

तीसरेने कहा—आदमीके कन्धेपर आदमीकी मौत सवार है, जिसे हम बन्दूक कहते है।

वृद्ध और युवक

वृद्धने कहा—"सयम ही शक्तिका स्रोत है।"

वृद्धके स्वरमे अनुभवकी स्थिरता थी, उपदेशका गाम्भीर्य था।

युवकने कहा—"बिजार अपने प्रदेशमे गर्भाधानका एक मात्र पुरोहित है और वृषभ सयम की साकार प्रतिमा, पर दोनोमे शक्तिका अग्रदूत है बिजार और बैल उसे देखकर काँपा करता है।"

युवकके स्वरमे तरुणाईका चाञ्चल्य इठला रहा था।

"कुछ भी हो, शक्तिका स्रोत तो सयम ही है।" वृद्धके मुखपर झल्लाहट थी। प्रतिवाद उसके लिए असह्य है। वह चाहता है नम्र आज्ञापालन।

"सयम जीवनका महान् तत्त्व है, पर शक्तिका स्रोत है स्वतन्त्रता।" युवकके मुखपर शोखी थी। प्रतिवाद यौवनका स्वभाव है।

रण-दुन्दुभि

विश्वकी शान्ति-परिषद्मे संसारके प्रमुख विचारकोने युद्धका विरोध किया।

अस्त्रोके निर्माता चोके।

फौजी अफसरोको अपने भविष्यकी चिन्ता हुई।

रणदुन्दुभिने कहा—"जब तक मेरा अस्तित्व है, युद्ध होते रहेगे, तुम कुछ चिन्ता न करो।"

"और ये विचारक?" रणदुन्दुभि हँसी—"इनकी आवाज मेरी पहली ही गूँजमे इस तरह खो जायेगी जैसे बादलकी गडगडाहटमे भीगुरोकी सीटी खो जाती है।"

कारखानोकी चिमनियाँ निश्चिन्त हो, धुवाँ उगलने लगी और फौजी फिरसे अपनी परेडमे जुट गये।

सामने और पीछे

सेठ शम्भुनाथ नगरके बहुत ही प्रतिष्ठित नागरिक थे।

वे अपने बैकके सर्वेसर्वा, रामलीला कमेटीके सभापति और म्यूनिसिपल बोर्डके चेयरमैन थे।

उनकी पत्नीका उस दिन देहान्त हो गया, तो सारे शहरमे जैसे शोक छा गया और कोई दस हजार आदमी श्मशान-यात्रामे सम्मिलित हुए।

सबने कहा--कितना मान करते है लोग सेठ शम्भुनाथका!

उस दिन अचानक सेठ शम्भुनाथका हार्टफेल हो गया।

उनके मित्रोमे शोक छा गया और कोई पाँच सौ आदमी उनकी श्मशान-यात्रामे साथ गये।

शेष लोग इस चर्चामे व्यस्त थे कि अब चेयरमैन कौन हो?

उन्नति

१९३०

रामू मिलमें मजदूर है। काम करता है, वेतन पाता है। वेतन-जीनेभरका साधन जीना—खींचतानकर पहली तारीखसे तीस तारीख तक साँस लेना।

रामूकी पसलीमें दर्द है—महीनों हो गये। वैद्यजीकी पुड़िया और हकीमजीके नुसखेसे फायदा नहीं हुआ।

रणजीतने उससे कहा—"डाक्टर रामनाथको दिखा ले एक बार भैया।"

रामूने साँस लेकर कहा—"दिखा तो लूँ, पर चार रुपये कहाँसे लाऊँ उसकी फीस? बिना फीस पहले लिये वह बात भी नहीं करता—अपनी मशीनका धड़कन पर तो क्या धरेगा?"

"तो क्या चार रुपयेके लिए जान दे देगा?" रणजीतने पूछा।

"चार रुपये अरे भाई, मजबूरीमें चार पैसे भी कुबेरका खजाना है!"

१९४०

रामू मिलमें मजदूर है। काम करता है, वेतन पाता है। वेतन जीनेका साधन जीना पहली तारीखसे तीस तारीख तक गुजारा कर लेना।

पत्नीको फेफड़ेकी तकलीफ है—महीनों हो गये, वैद्यजीकी पुड़िया और हकीमजीके नुसखेसे फायदा नहीं हुआ। मिलका डाक्टर भी बराबर दवा दे ही रहा है, पर पता नहीं उसकी दवाओंमें क्या भुस भरा है कि देहको लगती ही नहीं।

रणजीतने कहा—"डाक्टर रामनाथको दिखा ले भैया एक बार।"

रामूने गम्भीर होकर कहा—"बच्चोंका दूध महीनेभर बन्द करके पिछले महीने चार रुपये जोड़े थे और रामनाथको दिखाने गया था। क्या बताऊँ रणजीत, दस बरसमें वहाँकी दुनिया ही बदल गई। पहले किरायेका मकान था, अब अपनी दुमंजिली कोठी है। बाहर नई मोटर खड़ी थी—चमचम कि मुँह देख लो।"

रामू चुप हुआ, तो रणजीतने पूछा—"क्या बताया उसने भाभीको ?"

"बताया तेरा और मेरा सिर।" रामूने कहा।

"अरे भाई, जब डाक्टरके घर गया था, तो कुछ तो कहा ही होगा उसने।" रणजीतने पूछा।

"कहता, तो तब, जब वो तेरी भाभीकी नबज पकड़ता। अब बाहर बरामदेमें एक और बाबू बैठने लगा है। उसने कहा—"लाओ फीस" तो मैंने चार रुपये उसकी मेजपर धर दिये। बोला—"अब डाक्टर साहबकी फ़ीस आठ रुपये है।" मैंने उसे अपनी ग़रीबीकी बात कही, तो बोला—ग़रीब है, तो यहाँ क्यों आया—सरकारी अस्पतालमें जा।" क्या करता, अपने घर चला आया।

१९५२

रामू मिलमें मजदूर है। काम करता है, वेतन पाता है। वेतन-जीनेका सहारा जीना पहली तारीखसे तीस तारीख तककी जरूरतें पूरी करना। वेतन, मँहगाई और बोनस, तीनोंका रुपया रामूकी मुट्ठीमें आता है, तो एक बार तो वह राजा हो जाता है।

रामूका छोटा लड़का बीमार है—महीनों हो गये। वैद्यजीकी पुड़िया और हकीमजीके नुसखेसे फायदा नहीं हुआ। मिलका डाक्टर भी बराबर दवा दे रहा है, पर चार दिन उभारा आता है, तो एक दिनमें चुस जाता है। पता नहीं, क्या भूमिया रूठ रही है।

रणजीतने कहा—"मुन्ना हाथो आया जा रहा है, इसे डा० रामनाथको क्यों नहीं दिखा लेता रामू ?"

रामूको जोरसे हँसी आ गई। बोला—"गया तो था इसे लेकर एक दिन। बाहर वाला बाबू बोला—अब डाक्टरकी फीस दस रुपये हो गई है, दो रुपये और निकालो। मुझे उसी दिन बोनसके तीस रुपये मिले थे। मैंने मनमें कहा—अबे, अकडता क्यों है, ले दो रुपये और चाँदीके दो सिक्के ठकसे उसकी मेजपर रख दिये।

नम्बरकी घण्टी बजनेपर मैं डाक्टरके पास गया, तो वह पहचानी ही नहीं पडा—दस बरसमें फूलकर मोकमें शहतीर हो गया है पट्ठा। मुन्नेको देखकर नुसखा लिख दिया और कहने लगा—बीमारी ज्यादा है एक महीना इलाज चलेगा। दवा दो और दूध-फल-मक्खन खिलाओ।

मैंने मनमें सोचा—फिकर क्या है, समझ लेंगे बोनस नहीं मिला, पर बच्चेके लिए सब कुछ करेंगे। नुसखा लिये मैं दवावालेकी दूकानपर गया, तो उसने एक बार नुसखा देखा और एक बार मुझे। तब बोला—"रुपये भी हैं जेबमें ?"

मैंने कहा—"रुपये न होते, तो डाक्टर रामनाथकी सूरत क्यों देखता सरकारी अस्पताल न जाता सीधा।"

वह दवा बनाने लगा, तो मैंने पूछा—"कितनेकी दवा है भाई ?"

बोला—"पन्द्रह दिनकी दवा बाईस रुपयेकी है।" सुनकर क्या बताऊँ रणजीत, मैं नुसखा वहीं छोडकर भाग आया और बस उस दिनसे अपने ही डाक्टरका कडवा पानी इसके गलेमें डाल रहा हूँ। सोच लिया है—डाक्टर रामनाथ हमारे लिए नहीं हैं फिजूल भटकनेमें क्या फायदा।

इंजीनियरकी कोठी

मेरे नगरमे नहरके जो नये इजीनियर आये है, वे साहित्यमे अभिरुचि रखते है, इसलिए मेरा भी उनसे मेलजोल हो गया है।

मुझे उनकी कोठीपर कभी-कभी जाना भला लगता है। बात यह है कि वह कोठी अपनेमे इतनी पूर्ण है कि देखकर आश्चर्य होता है। इजीनियर साहबकी भोजन-मेजपर जब भी कोई ऋतुका फल आता है, वे कहते है—यह कोठीके बागका फल है भाई साहब !

मै जब-जब उनके यहॉ जाता हूॅ, तो उनकी कोठीका पूरा एक चक्कर अवश्य लगाता हूॅ। कोठी तो कायदेसे बनी है ही, उसका बगीचा भी बहुत करीनेसे लगाया गया है। कहा जा सकता है कि वह पारिवारिक उपवन है—एक परिवारके लिए आवश्यक सभी चीजे उसमे है।

उस दिन मै वहॉके बडे मालीसे बाते कर रहा था कि मुझे खोजते इजीनियर साहब भी आ गये। उन्हे देखते ही माली बोला—"सरकार, अपने बाद आनेवालोके लिए आप भी कोई पेड लगा दीजिये।"

मैने पूछा—"अपने बाद आनेवालोके लिए! क्या मतलब?"

बूढा माली हॅसा। तब बोला—"बाबूजी, इस कोठीका कुछ रिवाज ही ऐसा है कि यहॉ अपने करमका फल कोई नही भोगता!"

बात उलझ गई थी, उसे सुलझाते हुए-से मैने पूछा—"फिर किसके कर्मोका फल यहॉ भोगते है भाई?"

"दूसरेके कर्मोका फल बाबूजी!" बात सुलझ न पा रही थी, मैने कहा—"ठीक-ठीक समझाओ माली जी!"

बोला—"बाबूजी, जब कोठी बनी, तो यह बागवाली जमीन खाली पडी थी। बस कोठीके सामने थोडी-सी फुलवारी थी, और कुछ नही।

सबसे पहले मैकडोनल साहब आये। उन्होंने इसमें दो पेड कलमी आम और दो पेड लौकाटके लगवाये। अपने आप पानी दिया करते थे वे इनमें, पर बाबूजी, जिस साल लौकाटपर फुँगगी लगी, उनकी बदली हो गई। जाते-जाते भी वे इस लौकाटको ही देखते रहे।

उसके बाद हार्ट साहब आये। उन्होंने खूब लौकाट और आम खाये और नाखके ये दो पेड लगाये, पर जिस साल नाख फला, वे विलायत चले गये। बस यूँही नये-नये साहब आते गये और बाग बढता गया। आज जो फालसा आपने खाया है, यह हमारी सरकारसे पहलेवाले साहब-ने लगवाये थे दो पेड। जाने क्या बात है सरकार, कि इस कोठीमें किसी-को अपने लगाये पेडका फल नहीं मिलता। पता नहीं ऊपरवालोंको कुछ चिढ है क्या कि ऐसे ही समयपर वे हमारे साहबोंकी बदली करते हैं।"

इंजीनियर साहब चुप थे। वे शायद कुछ सोच रहे थे कि बागमें क्या लगाया जाये, पर तभी मैंने कहा—कोठीका बाग ही क्या, सारे विश्वका विकास ही इस पद्धतिपर हुआ है कि हम अपने पूर्वजोंके परिश्रमका फल भोगें और आनेवालोंके लिए परिश्रम करें।

इंजीनियर साहबने कहा—"आनेवाले हमें मानके साथ स्मरण करें या फिर गालियोंके साथ, यह इस बातपर निर्भर है कि हमारा आजका निर्माण किस कोटिका है।"

मैं सोच रहा था—तो हमारा वर्तमान ही नहीं हमारा भविष्य भी हमारी ही मुट्ठीमें है—जीवन ही नहीं, स्वर्ग भी।

दो मित्र

मै उस दिन अचानक सकटमे पड गया, तो मेरे दो मित्र मेरे पास आये ।

एकने कहा—"यह सही है कि मेरा मस्तिष्क और हृदय अस्वस्थ है, पर मेरे हाथ पैर खूब काम करते है । तुम चिन्ता न करो, मै तुम्हारी सहायताके लिए प्रस्तुत हूँ ।"

दूसरेने कहा—"यह सही है कि मेरे हाथ-पैर अस्वस्थ है, पर मेरा मस्तिष्क और हृदय खूब काम करते है । तुम चिन्ता न करो, मै तुम्हारी सहायताके लिए प्रस्तुत हूँ ।"

मैने पहलेको धन्यवाद देकर विदा कर दिया और दूसरेको अपने सकटमे साझी बनाकर निश्चिन्त हो गया ।

रामनाम सत्य है !

कुछ लोग मुर्देको कन्धोपर लिये जा रहे थे ।

जो सारे जीवन घिसटकर चले, वे भी यहाँ—प्रगतिशील हो जाते है ।

रामनाम सत्य है ।

दर्शकोमे किसीने कहा—"बेचारा अपनी राह पूरी कर गया ।"

एक साधु कहीसे आ निकले । बोले—"हाँ भाई, अपनी राह तो पूरी कर ही गया, पर हमे भी हमारी राह दिखा गया ।"

मैने राह चलते योही यह बात सुनी, तो अपनेसे कहा—"रामनाम सत्य है" मृत्युका अभिनन्दन ही नही, जीवनका निमन्त्रण भी है ।

मेरा घर

नरेश मेरा विद्यालयका साथी था।

विद्यालयके बाद बरसों बीत गये, मिलनेका मौका ही न लगा। काश्मीर जा रहा था कि राहमें उतर पडा एक दिनके लिए।

नरेशका नगर बीचमें ही था।

नरेश धनी बापका बेटा। बडा घर, बडा बाग, बडे ठाट। मुझे सब कुछ दिखाकर बोला—"आया पसन्द मेरा घर ?"

"हॉं, बहुत बढिया।" खुशीमें मैंने कहा, पर तभी मुझे लगा कि मकान मुसकरा रहा है और इस मुसकराहटमें मिठास नहीं, व्यंग है।

क्यों भाई, तुम क्यों हँसे ?" मैंने धीरेसे पूछा।

"यों ही तुम्हारे मित्रकी बात सुनकर हँसी आ गई। उसने कहा।

'उसमें हँसनेकी क्या बात है ?'

"हँसनेकी क्या बात ? हुँः, अरे भाई, उसमें हँसनेके सिवाय और क्या बात है ? कहता है मेरा घर पसन्द आया ?"

"तो फिर ?"

"तो फिर क्या ?—मेरा घर-मेरा घर। यही बात इसका बाप कहा करता था और यही उसका बाप। दोनों जाने अब कहॉं गये ? दोनोंकी तस्वीरें जरूर मेरी दीवारोंपर टॅंगी हैं, जिन्हें मेरे छोटे-से छेदमें रहनेवाली हजारों दीमकोंमेंसे एक नन्हीं-सी दीमक कुछ पलोंमें चाट सकती है।"

मैंने सहमे-से उसकी तरफ देखा।

वह अब भी मुसकरा रहा था, पर मैंने अनुमान किया कि मैं उसकी मुसकराहटके बोझसे दबा-सा जा रहा हूँ।

अन्धोंका जलूस

देशके सुदूर-प्रदेशमे ताडपत्रपर शताब्दियों पूर्व लिखी एक धर्म-पुस्तक सुरक्षित है।

पढता उसे कोई नही। आनेवाले उसका दर्शन करते, उस पर पुष्प-अक्षत चढाते और मठाधीशको दक्षिणा अर्पण करते है।

दर्शन देते-देते और भक्तोकी पूजा स्वीकार करते-करते पन्द्रह शताब्दियोंमे बेचारा ताडपत्र जीर्ण-शीर्ण हो चला।

राजधानीके सग्रहालयाध्यक्षने मठाधीशको लिखा कि आप पुस्तकको यहॉ ले आयॅ, तो वैज्ञानिक पद्धतिसे जीर्ण ताडपत्रको फिरसे नवजीवन दिया जा सकता है।

प्रस्तावने विवादका रूप ले लिया। कुछ लोग इसे माननेके पक्षमे थे और कुछ इसे शास्त्रका अविनय कहते थे।

कुछ वर्षोमे पुस्तककी स्थिति और भी खराब हो गई और तब अनिच्छापूर्वक यह प्रस्ताव मान लिया गया।

फर्स्टक्लासका एक डिब्बा रिजर्व किया गया और एक शानदार जलूसके साथ नगरके अत्यन्त प्रतिष्ठित पुरुष नगे पॉव, नगे सिर, अपने कन्धो पर उस धर्म-पुस्तकको स्टेशन तक ला, उसे बाये-पोछे और पुष्प-पल्लवोसे सजाये डिब्बेमे प्रतिष्ठित कर गये।

रास्तेमे हर स्टेशनपर हजारो नर-नारी उस पुस्तकका दर्शन करने आते रहे। पुस्तक पुष्पोसे आच्छादित थी इसलिए किसीके दर्शन तो क्या होते कुछ पुष्पार्पण और शेष पुष्प-प्रक्षेप अवश्य कर पाये।

यों यह धर्मपुस्तक राजधानीमे आ पहुँची और एक विशाल जलूसके

साथ अत्यन्त प्रतिष्ठित पुरुषोंके कन्धों पर आरूढ़ संग्रहालयकी ओर चली। जय-जयकार होता रहा, फूल बरसते रहे।

एक बड़े बाजारमें जलूस पहुँचा, तो एक अन्धे भिखारीने पाससे जाते एक नागरिकसे पूछा—"यह किनका जलूस है भाई?"

नागरिकने उत्तर दिया—"अन्धोंका।"

"अरे, अन्धोंका जलूस निकल रहा है और हमें खबर भी नहीं।" आश्चर्यसे चिल्लाकर अन्धेने कहा।

"माफ करना सूरदास, मैं कहना भूल गया था कि आँखोंके अन्धोंका नहीं, विश्वासोंके अन्धोंका यह जलूस है।"

"विश्वासोंके अन्धे? ये क्या होते हैं जी?"

"आँखोंके अन्धे होते हैं शारीरिक अपाहिज और विश्वासोंके अन्धे मानसिक अपाहिज, बस दोनोंमें यही अन्तर है।"

अन्धा अपनी अनदेखती आँखें फाड़े नागरिककी ओर देख रहा था, पर नागरिक अब वहाँ नहीं था।

रजकण

लक्ष्मीपुत्रने मार्गमे पडे रजकणसे अभिमानके स्वरमे कहा—

"मै लक्ष्मीपुत्र हूँ। वैभवकी आकर्षक किरणे मेरे चारो ओर छिटका करती है, गुणीजन मेरे चारो ओर मँडराया करते है। मैं अनेकोका भाग्य-विधाता और सम्मान तथा सुखका अक्षय अधिपति हूँ।"

उपेक्षाके स्वरमे रजकणने कहा—"मै रजकण हूँ। इस पथमे आनेवाले सन्तो और दीवानोका चरण-चुम्बनकर अपनेको कृतार्थ किया करता हूँ। यही मेरी निधि है। हृदयके ऑचलमे अपना यह सुख बटोरे मै आनन्दके राग गाता रहता हूँ।

लक्ष्मीपुत्रने अहकारका तीखापन कण्ठमे ले, घृणाके स्वरमें कहा—"यह सब दरिद्रीके मन समझानेकी बाते है। लोमडीके लिए अगूर खट्टे होते ही है क्षुद्र!"

अपने कोमल स्वरको जरा पैनाकर रजकणने कहा—"यही पडे-पडे मैने अनेक लक्ष्मीपुत्रोको भिखारीके रूपमे जाते देखा है अभागे अभिमानी!"

दियासलाई

जली हुई दियासलाईकी एक सीक, काली-कुरूप और निरर्थक, जलते दीपकके प्रकाशमें देखा सुरुचिपूर्ण सज्जित कमरेके द्वारमें पड़ी है।

सोचा—दिया जलाकर किसीने उसे बाहर फेंका होगा कि यहाँ आ गिरी। जो न हो पाया, वह मुझे करना था—मैंने उसे उठा लिया कि एक मद्धम, पर बेधती-सी कराह कानोंमें पड़ी।

"क्यों, क्या बात है?" मैंने पूछा।

"बात कुछ नहीं। इस भवनमें सुन्दरता और उपयोगिताके लिए ही स्थान है। कभी मुझमें भी ये गुण थे, तो मेरे लिए भी यहाँ स्थान था। अब मेरा सौन्दर्य और शक्ति मुझे बलपूर्वक घिस-रगड़कर अपहरण की जा चुकी है। इसलिए हरेककी उँगलियाँ मुझे दूरसे दूर फेंकनेको ही मचमचाती है।' तड़पकर उसने कहा।

तड़पनने मुझे करुणासे भर दिया और मैंने उसे उँगलियोंसे मुट्ठीमें लेकर कहा—"सचमुच तुम्हारे साथ बहुत अन्याय हुआ है!"

मेरी सहानुभूतिसे द्रवित हो उसने पूछा—"तुम किस लोकके शृंगार हो देव?'

हँसकर मैंने कहा—"मैं इसी लोकका एक मर्त्य मानव हूँ—क्यों?"

"यह भी क्या मेरे लिए विश्वासकी बात हो सकती है कभी?'—

जिज्ञासाके बाद विश्वासके स्वरमें उसने कहा—"यह भावुकता तो इस व्यापारी संसारकी चीज नहीं है देव।'

"मैं मातृभाषाका एक साधारण पुजारी हूँ। कवियोंके चरणोंमें बैठकर भावुकताका यह थोड़ा-सा प्रसाद मुझे प्राप्त हुआ है।" मैंने लाड़से कहा।

भला क्यों ?

राजेश्वर और रामेश्वर दोनो पडौसी ।

राजेश्वर अध्यापक तो रामेश्वर वकील ।

रामेश्वरने खरीद ली, एक सुन्दर-सुन्दर मोटर । वह ड्राइवरके झमेले पालता नहीं, खुद अपनी गाडी चलाता है ।

एक दिन राजेश्वरकी पत्नीको दौरा पड गया, तो वह डाक्टरको बुलाने चला । रामेश्वरने उसे रोककर कहा—"ठहरो, गाडी निकालता हूँ ।"

"आप क्यो कष्ट करते है, मै ताँगा ले लूँगा ।" राजेश्वरने नम्र होकर कहा ।

"क्या पागलपनकी बाते कहते हो ।' रामेश्वरने लाडसे कहा और वे गाडी निकाल लाये ।

× × ×

एक दिन बाहरसे राजेश्वरके कोई मित्र आये थे । वे उन्हे साथ लिये बाहर आये, तो रामेश्वर सदाकी भाँति अपने मुवक्किलोसे जुटा था ।

राजेश्वरने कहा—"भाई, जरा गाडी निकालो, हम नहर जाना चाहते है । लौटते हुए तो हम घूमते चले आयेगे ।"

रामेश्वरने पैनी आँखोसे उन्हे देखा और तब बोले—"जी, शुक्रिया, ताँगा स्टैण्ड सामने ही है ।"

और वे फिर अपने काममे लग गये ।

काँचका जौहरी

उसके पास पूंजीकी कमी है, पर उसका अभिमान पूंजीपतियासे भी बडा है। आज जहाँ उसकी दूकान है, वहाँ पहले खाली मैदान था। उस मैदानमें उसकी काँचकी दूकान दूरसे ही चमचमाया करती थी।

अब उस मैदानमें जौहरी बाजार खुल गया है। एक-एक दूकानमें इतने कीमती रत्न हैं कि उनकी वह कीमत भी नहीं ऑक सकता। उसकी दूकान अब भी रंग-बिरंगी काँच-वस्तुओंसे भरी है। बडी मुश्किलसे वह दो-चार मामूली रत्न ला पाया है।

जौहरी जानते हैं—यह काँचवाला है। वह भी जानता है कि मैं काँचवाला हूँ, पर दावा वह हमेशा जौहरी होनेका ही करता है। जब कहीं दूकानोंकी कीमत खुलने लगती है, तो वह मोर्चेपर नहीं आता और अपनी जगमगाती गद्दीपर बैठे-ही-बैठे बडबडाता रहता है—"कलके आये ये लडके अपनेको बडा जौहरी समझते हैं। पर जब कहीं इनका पता भी न था, तबसे मेरी दूकान मशहूर है।'

यह कल्पना-चर्चित प्राचीनता ही उसका अभिमान है। पूँजी और प्रतिष्ठाकी कमीके स्थानमें इसे रखकर वह तोलता है और वह अपनी प्राचीनताकी घोषणाका एक भी अवसर नहीं चूकता।

उसे मालूम है कि लोग पीछे उसकी हँसी उडाते हैं इसलिए वह शक्की भी हो गया है और झक्की भी। दो आदमी कहीं बैठे कुछ भी बात क्यों न कर रहे हों, उसे अपने विरुद्ध षडयन्त्रकी रचना दिखाई दे जाती है।

कहीं किसी जौहरीकी चर्चा हो, वह खुदाई फौजदारकी तरह आ कूदता है। कहीं जौहरियोंका जिक्र हो, वह उनका प्रतिनिधित्व करनेको

बेचैन रहता है। किसी-न-किसी बहाने जौहरियोंको अपनी दूकानपर इकट्ठा करनेकी धुन उसे सदा सवार रहती है।

चमकको ही वह जवाहरकी सबसे बड़ी कीमत मानता है। उसके पास खूब चमकीले काँच हैं। जनताकी रुचिका उसे खूब पता है। जैसा गाहक हो, उसे वैसी ही चीज वह दिखाता है।

जौहरियोंके यहाँ गाहक कम आते हैं, रुपया अधिक। उसके यहाँ गाहक खूब आते हैं, रुपये कम। वह रुपयोंकी संख्यापर कभी बात नहीं करता। कोई उसे उस बातपर घुमा-फिराकर ले भी आता है, तो वह कन्नी काट जाता है। हाँ, गाहकोंकी संख्याके नारे वह हमेशा लगाये रहता है—"अरे भाई, क्या करें, रातके ११ बजे तक गाहक पीछा ही नहीं छोड़ते। हमारे पड़ौसमें दूसरे भी तो जौहरी हैं, पर जाने क्या बात है कि गुड़ालका मेला इस गुलामकी ही दूकानपर जुड़ता है।"—

समझदार लोग उसकी कमजोरीको जानते हैं और उसपर दया करते हैं। वह इस दयाको ही प्रशंसा मानता है। लोग जौहरी भी उसे कहते हैं और काँचका जौहरी भी। दोनोंमें उपहासकी पुट रहती है, पर एकसे वह फूल उठता है और दूसरेसे हो जाता है छछून्दर, जिससे उसका कुरूप चेहरा और भी बदरूप हो उठता है।